DAMAGE BOOK

Text Dark And Light Within The Book Only

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182444

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 1482 / D86S Accession No. P.G H2246

Author दुग्गल, वैकुण्ठनाथ

Title समुद्रगुप्त 1951

This book should be returned on or before the date last marked below.

ईस्ट पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा रत्न के लिये नियत ।

Approved for **Libraries** all of Punjab vide circular No PR (Lib)--51--31390 dated 6-12-51 by the Secretary Punjab State Central Library Committee, Simla-2.

समुद्रगुप्त

ऐतिहासिक नाटक

नाटककार

वैकुण्ठ नाथ दुग्गल

प्रकाशक:—

प्रभ साहित्य निकेतन

प्रकाशक

प्रेम साहित्य निकेतन,

नई सड़क देहली , तथा जालन्धर

दूसरा संस्करण सन् १९४७

मुद्रक—

दौलत प्रिंटिंग प्रैस

मीनाक्षी को

उस की वर्ष गाँठ पर

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

समुद्रगुप्त—भारत-सम्राट ।

विष्णुगोप—काञ्ची-नरेश ।

वसुबन्धु — बौद्ध कवि तथा महाश्रमण ।

हरिसेन — महाराज समुद्रगुप्त के मंत्री ।

आनन्द, रुद्र, राहुल — भिक्षु ।

विदूषक, अमात्य, सेनापति, द्वारपाल, दूत, गुप्तचर, नागरिक, युवक ।

स्त्री-पात्र

कञ्चन — काञ्ची की राजकुमारी ।

तुषार — कञ्चन की एक सखी ।

सुनीता— विदूषक की पत्नी ।

श्यामा— एक वीर वधू ।

भामा — एक भिक्षुणी ।

रम्भा — नर्तकी ।

मालिन, भिक्षुणी, युवतियां, परिचारिका ।

प्राक्कथन

कौशाम्बी का शिलालेख सम्राट् समुद्रगुप्त के विषय में एक प्रामाणिक प्रशस्ति है। इस ऐतिहासिक अन्वेषण के पूर्व विश्व का लिखित इतिहास भारत के इस महान् विजेता पर मौन था। हिन्दू-धर्म के इस स्वर्ण-युग में भारतीय संस्कृति एक जीवित प्रभाव के रूप में विकास की ओर अग्रसर होने लगी थी। अखिल संसार से भारत के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सम्बंध स्थापित हो रहे थे। महायान सम्प्रदाय ने बुद्ध मत के हिन्दू धर्म में लीन होने का मार्ग बना दिया था। भिक्षु पतन की ओर जा रहे थे। उनके जीवन में विलासिता तथा सांसारिक मोह का कल्मष भर गया था। इसी पृष्ठभूमि पर मैंने इस नाटक को खड़ा करने का प्रयास किया है।

महामात्य हरिसेन द्वारा लिखी गई इस प्रशस्ति में महाराज समुद्रगुप्त एक विकट योद्धा, कुशल कलाकार तथा अनुपम कवि के रूप में हमारे सामने आये हैं। नाटक का घटना-क्रम इसी शिलालेख के आधार पर चल रहा है। भगवान तथागत पर मेरी अटूट श्रद्धा होते हुए भी 'वसुबन्धु' के रूप में ऐतिहासिक तथ्य को नाटक में लाने का मोह मैं छोड़ नहीं सकता। कल्पना की जितनी उड़ान 'समुद्रगुप्त' में है उसे मैं क्षम्य ही समझूंगा क्योंकि उस से इतिहास की हानि नहीं हुई।

नाटक दुःखान्त है। जीवन के इस नाटक में भी तो आंसुओं की ही बहुलता है मुस्कराहटें तो बस गिनी चुनी हैं। अन्तर्द्वंद्व की अवतारणा में यदि मेरे आलोचक नाटक को सफल कहें तो उसका श्रेय साहित्य के उन जादूगरों—कालिदास तथा शैक्सपियर—को है जिनकी नाट्यकला मेरे पथ को आलोकित करती रही है। त्रुटियों का दोषी तो मैं अपने आप को ही मानूंगा।

रोहतक,
५-६-४६

वैकुण्ठ नाथ दुग्गल

समुद्रगुप्त

पहला अंक

पहला दृश्य

समय—गोधूलि।

(दक्षिण के महाकानन में कृष्णा नदी का तीर। सूर्य की अरुण किरणें फैलती हुई ऊर्मियों से निरन्तर खेलवाड़ कर रही हैं। तट पर खड़े महाराज समुद्रगुप्त जल-प्रवाह को एक टक निहार रहे हैं। उनकी आंखों में ज्योति है। मस्तक पर स्वेद बिन्दु चमक रहे हैं। वक्ष पर मुक्तामाल है। समीप ही वृक्ष से कोकिल की कुहू कुहू कानन के मौन को भंग करके चली जाती है।)

(सम्राट के युद्धःमन्त्री तथा राजकवि हरिसेन का प्रवेश)

हरिसेन—जीवन का प्रवाह देख रहे हैं महाराज ?

समुद्रगुप्त—नहीं कविवर, सोच रहा हूँ कि सरिता के अन्तर में यह अग्नि शिखा निरन्तर क्यों जला करती हैं। यह तरंगें रह रह कर क्यों मचल उठती हैं। यह कलकल करता हुआ नील जल अबाधगति से बहता चला जा रहा है। इसे कहीं विश्राम नहीं।

हरिसेन —अपने प्रियतम में लीन होने की धुन है इसे महाराज। चलते रहना ही इसका जीवन है। जिस दिन इसकी गति रुक गई, प्रकृति की ताल और लय थम जायगी; सृष्टि की समूची चेतनता जड़मय हो जायगी।

समुद्रगुप्त—ठीक कहते हो कविवर, विश्राम और मृत्यु एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

हरिसेन —और अन्तर की यह आग्नेय-शिखा जलाए नहीं जलती महाराज। यह तो अनायास जल उठा करती है। यह विधाता की अमर देन है। इसे प्रज्वलित रखने में ही मानव का कल्याण है।

समुद्रगुप्त—मगध लौटनेसे पहले इस मनोरम तीर पर खड़े होकर जल की हिलकोरों का दृष्टि भर देख लेना चाहता हूँ। इन दो वर्षों में निरंतर युद्ध से ऊब कर कई बार इस हरित तट का आश्रय लिया है। आज इसे छोड़ते समय जाने हृदय में एक वेदना का तूफ़ान सा उठ रहा है।

हरिसेन—पाटली-पुत्र के प्रजाजन आपकी प्रतीक्षा में हैं महाराज। आज समस्त भारत पर आपकी कीर्ति-पताका फहरा रही है। मगध के लोग अपने महान् विजेता पर पुष्पवृष्टि करने के लिये उत्सुक हैं।

समुद्रगुप्त—(अस्तगामी सूर्य को देखते हुए) सूर्य अस्त हो रहा है मंत्री। वह देखो जल पर थिरकती हुई अपनी रश्मि-माला को उसने समेट लिया है। अभी आकाश

में निशा की कालिमा फैल जायगी। अब हमें मगध लौटने की तैय्यारी करनी चाहिये।

हरिसेन जैसी आज्ञा महाराज।

(प्रस्थान)

[अचानक एक तीर से घायल हो कर एक पक्षी गिर पड़ता है। समुद्रगुप्त उसे उठा कर उस के परों को सहलाते हैं। पक्षी की चोंच से स्वर्ण-मुद्रा गिरती है]

समुद्रगुप्त—(चारों ओर देख कर) भारत सम्राट के सम्मुख यह दुःसाहस किसने किया है ? (पक्षी को छाती से लगा कर) निरीह पक्षी, तुम्हारे साथ न्याय किया जाएगा।

(किसी के गाने की मन्द-ध्वनि को सुन कर पक्षी को छिपा लेते हैं। कञ्चन का प्रवेश। सोलह वर्ष की सुन्दरी। बालों में फूल गुंथे हुए हैं। हाथ में धनुष बाण पकड़ा है। गुनगुनाती हुई अपने ही ध्यान में चली जा रही है। सम्राट तन्मय होकर सुनते हैं।

कञ्चन—(गाती है)

श्याम घन में दामिनी मैं।
पंख सपनों के लगाए,
ओढ़नी काली सजाए,
चाँद तारों की कहानी
नील नभ से जो सुनाए,
वह मदिर मृदु, यामिनी मैं।
श्याम घन में दामिनी मैं॥

समुद्रगुप्त—इस मधुर कंठ पर मैं तुम्हें साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकता सुन्दरी। किन्तु···

कञ्चन—(शीघ्रता से मुड़ कर विस्फारित नेत्रों से सम्राट को देखते हुए) आप ? कौन हैं आप ? एक कुमारी को इस प्रकार सम्बोधित करने का आप को क्या अधिकार है ?

समुद्रगुप्त—(पत्री दिखाते हुए) पत्रियों का आखेट करने वाली युवती, तुम्हारी निर्भीकता उद्दण्डता की सीमाओं को छू रही है।

कञ्चन—तो यह पत्री आपके पास है ? यह मुद्रा मेरी है।

समुद्रगुप्त—अपने बाण से इसे आहत करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ?

कञ्चन—सम्राट समुद्रगुप्त के राज्य में चोरी करना पाप है। पत्री पर मुद्रा चुराने का अभियोग था। उसे इसका उचित दण्ड मिला है।

समुद्रगुप्त—उसी राज्य का यह विधान है कि जीवों पर हिंसा न की जाए।

कञ्चन—तर्क की इन पेचीली पगडंडियों पर चलने के लिए मेरे पास समय नहीं। (पश्चिम की ओर देख कर) सूर्य छिप गया है। मेरी मुद्रा मुझे दे दीजियेगा।

समुद्रगुप्त—पहले तुम्हें इस अपराध के लिए क्षमा माँगना होगा। तुम ने राजनियम के प्रतिकूल आचरण किया है।

कञ्चन—उसके लिए मैं सम्राट से क्षमा मांग लूंगी । आप से नहीं । मुद्रा लौटाने में अधिक विलम्ब मैं सहन न कर सकूंगी ।

समुद्रगुप्त—(मुस्करा कर) और यदि तुम्हें यह पता चल जाए कि जिससे तुम बातें कर रही हो वह स्वयम् सम्राट ही है ।

कञ्चन—तो क्या आप...

समुद्रगुप्त—हां, मैं राज्य विधान का निर्माता सम्राट समुद्रगुप्त हूँ ।

कञ्चन—क्षमा कीजिये महाराज ! मुझ से भूल हुई ।

समुद्रगुप्त—(मुस्करा कर) अस्तु, हम तुम्हें क्षमा करते हैं । किन्तु मुद्रा के स्थान पर तुम्हें हम यह मोतियों की माला देंगे । (अपने गले से मुक्तामाल उतार कर देते हैं)

कञ्चन—ऐसा क्यों महाराज ?

समुद्रगुप्त—यह तुम्हारी निर्भीकता का पुरस्कार है । अब तुम जा सकती हो। (पक्षी को छोड़ते हुए) तुम भी निर्भय होकर उड़ो पंछी । (कञ्चन माला लेकर जाने लगती है)

समुद्रगुप्त—देखो तुम्हारा नाम क्या है ?

कञ्चन—मुझे कञ्चन कहते हैं । (प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—(कञ्चन के जाने के मार्ग की ओर शून्य दृष्टि डालते हुए) कञ्चन । जीवन की प्रतिमा । राष्ट्र के

भाग्याकाश में दमकने वाली चञ्चल । (सामने देख कर) भारत ! तुम्हारा अतीत उज्ज्वल था । वर्तमान गौरवपूर्ण है । तुम्हारा भविष्य भी गरिमामय होगा ।

(हरिसेन का प्रवेश)

हरिसेन—क्या मैं सम्राट की विचारधारा में विघ्न डाल सकता हूँ ?

समुद्रगुप्त—कौन ? मंत्री ? आओ कविवर ।

हरिसेन आकाश में पूर्णिमा का चांद छिटक उठा है । शिविर में लौटने की प्रार्थना करने आया हूँ ।

समुद्रगुप्त —क्षण भर युद्ध से अवकाश मिला है मन्त्री । यहां प्रकृति के आँगन में कितनी शान्ति है !

हरिसेन—यह सारा जीवन ही युद्ध है महाराज ।

समुद्रगुप्त—युद्ध-स्थल में आर्यावर्त के नरेशों को परास्त करने के पश्चात् भी मैं यहाँ प्रकृति के मन्दिर में अपने आप को अकिंचन पाता हूँ । (नींद के जल में चांद के प्रतिबिम्ब को देख कर) नदी के नील जल में कौमुदी स्नान कर रही है । राकेश उसे देख कर मुस्करा रहे हैं ।

हरिसेन—तारों जड़ा दुकूल पहने यामिनी चली आ रही है महाराज । प्रात:काल मगध लौटना है ।

समुद्रगुप्त—तुम चलो मंत्री, मैं आ रहा हूं ।

हरिसेन—जैसी आज्ञा महाराज ।

समुद्रगुप्त—(शून्य में देख कर) यामिनी । मंदिर मृदु यामिनी ।

दूसरा दृश्य

समय-प्रातः काल

(काञ्ची के महाबोधि विहार का मन्दिर। तथागत की पाषाण
प्रतिमा के सम्मुख महाश्रमण वसुबन्धु कर-बद्ध खड़े हैं।
सूर्य्य की अरुण किरणें भिक्षुराज की केश राशि
में अटक रही हैं।)

वसुबन्धु— (गाते हैं)

तुम सुधा बरसा रहे हो।
किन्तु मेरा हृदय जर्जर,
शान्ति का संदेश तजकर,
दूर होता जा रहा है,
तुम सुपथ से नाथ जिस पर

तुम चलाते जा रहे हो।
तुम सुधा बरसा रहे हो।

मैं गगन के गान गाता,
स्वर्ग के सपने सजाता।
मोह का व्यवधान सुन्दर,
अब कभी मैं हूँ बनाता

तुम हटाते जा रहे हो।
तुम सुधा बरसा रहे हो॥

हे शान्ति के अमरदूत, मेरे मानस में एक ज्वार उठ रहा है। न जाने क्यों इस जीवन से जी ऊब गया है। तुम्हारी पीयूषमयी वाणी को पढ़ता हूँ तो हृदय आत्म-ग्लानि से भर जाता है। किन्तु दूसरे ही क्षण मेरा कवि मुझे झिझोड़ कर कहता है—संघ के इस नीरस जीवन से कहीं दूर चले जाओ जहां सरसता का संचार हो, सौन्दर्य मचलता हो, मधुरिमा नाचती हो। जहां तुम्हारे स्वप्नों का शृंगार हो सके।

(भिक्षुणी का प्रवेश)

भिक्षुणी—विहार के जलकुण्ड में स्नान करके राजकुमारी कञ्चन अपनी सखी सहित मन्दिर में पधार रही हैं।

वसुबन्धु—मन्दिर का प्रवेश-द्वार सब के लिए खुला है भिक्षुणी महाश्रमण का होना उस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता। उन्हें आने दो।

(कञ्चन का अपनी सखी तुषार के साथ प्रवेश, कञ्चन सिमटी सी चली आ रही है केशों से जल के बिन्दु मोतियों के समान लटक रहे हैं।)

वसुबन्धु (राजकुमारी की ओर देख कर) तथागत तुम्हारी ओर निहार रहे हैं कुमारी। उनके अमर सन्देश को ग्रहण करो।

कञ्चन—तथागत के दर्शनार्थ ही आई हूँ महाश्रमण।

वसुबन्धु—भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे देवी। देखो उनकी

वरदमुद्रा जाने त्रिभुवन की शान्ति यहीं केन्द्रीभूत हो गई हो। वे सब को आश्रय देते हैं। किन्तु.....

(एकाएक राजकुमारी की आंखों में आंखें डालकर देखते हैं।)

कञ्चन—(लजा कर) किन्तु क्या महाश्रमण ?

वसुबन्धु—(खिलखिला कर) किन्तु मैं उस शान्ति से वञ्चित हूँ कुमारी। मेरे हृदय से धुआं सा उठता रहता है। जाने हृत्तल में कोई चिनगारी फेंक गया हो—नित्य सुलगती रहने वाली। इसी प्रतिमा के चरणों में बैठकर कई बार मैं ने शान्ति का वरदान मांगा है किन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली।

कञ्चन— आप शान्ति की खोज में इतने व्याकुल क्यों हैं महाश्रमण ? अशान्ति भी क्या हेय है।

वसुबन्धु—अशान्ति ? वास्तव में संसार में कुछ भी हेय नहीं कुमारी। कुछ भी त्याज्य नहीं। नील गगन की गोद में नक्षत्र रात रात भर जलते हैं। रात भर किसी की प्रतीक्षा करते हैं। इस जलन में, इस अशान्ति में ही उन्हें आनन्द है। अशान्ति हेय नहीं राजकुमारी।

(जाने लगते हैं। अचानक कुछ गिरने का शब्द होता है। सब की दृष्टि भिक्षुणी के कंपित कर से गिरे हुए कमंडल की ओर जाती है।

कञ्चन— भिक्षुणी।

भिक्षुणी—राजकुमारी, अभी अभी मैं ने देखा जाने प्रतिमा

हिल रही हो। जाने उसके अधर कुछ कहने के लिये खुलकर बन्द हो गये हों। मेरे हाथ कांप उठे और कमंडलु गिर गया।

वसुबन्धु—प्रतिमा के अधर? तुमने अपनी आँखों से देखा भिक्षुणी?

भिक्षुणी—हां महाश्रमण, मैंने अपनी आंखों से देखा।

(पहले प्रतिमा पुनः कञ्चन की ओर देखते हुए महाश्रमण का प्रस्थान)

भिक्षुणी—(अपना ममंडलु उठाते हुए) भगवान दया करें।

(प्रस्थान)

कञ्चन— तुषार, तुमने देखा?

तुषार— क्या?

कञ्चन— महाश्रमण का त्रस्त मानस।

तुषार— मुझे तो उनसे भय लग रहा था कञ्चन। वे तुम्हें घूर घूर कर देख रहे थे।

कञ्चन— (मुस्करा कर) इसी लिए तो उनके हृदय में अशान्ति की ज्वाला नित्य सुलगती रहती है। भिक्षुणी सत्य कह रही थी। प्रतिमा के अधरों पर महाश्रमण के मन की विकरालता का ही प्रतिबिम्ब आया था।

तुषार— क्या तुमने देखा था कञ्चन?

कञ्चन— मैं तो अब भी देख रही हूँ सखी। वह देखो भगवान के अधर हिले, जाने कह रहे हों—मन चंचल है। इसी पर विवेक का अंकुश रखो।

तुषार— मुझे तो ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं देता।

कञ्चन— पगली, दिखाई तो भिक्षुणी को भी नहीं दिया था। अनिष्ट की आशंका से उसके मन ने ही भगवान को यह रूप दिया था।

तुषार— संघ का जीवन कुलषित हो चुका है सखि। तथागत का अमर उपदेश भिक्षुओं के मनस्तल से विस्मृत हो गया है।

(नेपथ्य में कोलाहल)

कञ्चन— आज की दुर्घटना के विषय में भिक्षु-समूह चिन्तित हो उठा है। अब हमें चलना चाहिए।

(भिक्षुणी का प्रवेश)

भिक्षुणी—महाश्रमण तो नहीं लौटे राजकुमारी ?

कञ्चन— महाश्रमण ? नहीं तो।

भिक्षुणी—नहीं ? सुना है वे विहार को छोड़ कर चले गये हैं। (प्रतिमा की ओर देख कर) तुम तो अशरण को भी शरण देते हो प्रभु। महाश्रमण को तुम ने क्यों जाने दिया ? क्यों जाने दिया (पीछे हट कर) तुम नहीं बोलते ?क्रोध में आ गये हो ? किन्तु ऐसा तो तुम ने .....(कण्ठावरोध)

कञ्चन— भिक्षुणी, तथागत तो दया के आगार हैं। महाश्रमण अवश्य लौटेंगे।

भिक्षुणी—लौटेंगे ? हां वह अवश्य लौटेंगे।

(प्रस्थान)

कञ्चन— कितनी आस्था है इसे भगवान पर।

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

समय-प्रातः-काल

[पाटली पुत्र के राजोद्यान में अशोक वृक्ष की छाया में सम्राट समुद्रगुप्त वीणा बजा रहे हैं। प्राची में रवि का सोने का थाल क्षितिज को चीर कर ऊपर उठ रहा है कभी कभी समीर का एक आध झोंका सम्राट के केशों को उड़ाता हुआ चला जाता है।]

समुद्रगुप्त—(वीणा पर गाते हैं)

नील नभ में छा रहा है आज भी लाल गुलाल रे मन।
आज यह काली बदलियाँ,
कर रही क्यों रंग रलियाँ।
आज क्यों मुरझा रही हैं,
इस हृदय की कुसुम कलियाँ।
और मुस्काता उधर क्यों स्वर्ण का वह थाल रे मन,
नील नभ में छा रहा है आज लाल गुलालरे मन !

(नेपथ्य में कुछ युवतियों के खिलखिलाने का शब्द। विदूषक का हाँपते हुऐ प्रवेश। वस्त्रों पर टेसू के रंग के छींटे पड़े हैं। चेहरे पर किसी की गुलाल भरी पतलीं अंगुलियों के चिन्ह हैं)

समुद्रगुप्त—(मुस्करा कर) कौन ? विदूषक !

विदूषक— क्षमा कीजिये महाराज। पाटलीपुत्र में तो जीना भी

दूभर हो गया है। (वस्त्र साफ करता है)

समुद्रगुप्त—इस आकुल निराशा का कारण क्या है विदूषक ? जान पड़ता है कुछ युवतियों ने घेर लिया था।

विदूषक—हां महाराज। कठिनता से जान बचा कर आया हूं। एक ने हाथ पकड़ लिये दूसरी ने रंग उंडेल दिया। कोई गुलाल उड़ा रही थी। किसी ने पिचकारी दे मारी। मेरा तो नाक में दम हो ग।। इन स्त्रियां से तो भगवान ही बचाए।

नेपथ्य में पुनःखिलखिलाहट)यह देखो, यह देखो, यह फिर हंस रही है महाराज

समुद्रगुप्त—(मुस्कराकर) आज होली का त्योहार है विदूषक। जाओ फिर खेलो एक बार।

विदूषक—(घबरा कर) यह क्या कहा महाराज ? फिर खेलूँ ? नहीं नहीं यह मुझ से न हो सकेगा। इन नगर वधुओं को मेरे साथ फाग खेलने का क्या अधिकार है महाराज ?

समुद्रगुप्त—अधिकार की श्रंखलाएं आज ही तो खुलती हैं विदूषक ! वर्ष में एक ही दिन तो मानव और नारी स्वच्छन्दता का अनुभव करते हैं। आज बन्धनहीन होकर खेलो। रंग और अबीर की इस ललित क्रीड़ा में तन्मय होकर खेलते चलो।

विदूषक—(हस कर) खेलूंगा महाराज। अवश्य खेलूंगा। मैं जाता हूँ। सुनीता मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। (सम्राट को समझाते हुए) मेरी पत्नी है महाराज।

समुद्रगुप्त—जीवन के आल्हादमय क्षण किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।

विदूषक—तो क्या सुनीता भी किसी से फाग खेल रही होगी ? नहीं महाराज। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं उसे...मैं उसे...(मुट्ठी बन्द करके क्रोध का नाट्य करता है)

समुद्रगुप्त—तुम उसे क्या करोगे विदूषक ? मेरे राज्य में स्त्री का अपमान नहीं हो सकता।

विदूषक—(घबरा कर) नहीं महाराज, मैं उसे.....मैं उसे..... मैं उस पर रंग और अबीर के साथ अपना सारा स्नेह लुटा। दूंगाउसे मैंकहूँगा—सुनीता, वर्ष में एक ही दिन तो...(सिर खुजलाते हुए सोचने का नाट्य करके) एक ही दिन तो.....(सम्राट की ओर देख कर) क्या कहा था आपने ? बस मैं वही कुछ कह दूंगा महाराज।

(सम्राट मुस्कराते हैं। विदूषक का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—पुरुष कितना स्वार्थी है ! उसका हृदय कितना रिक्त, कितना खोखला है। जाने संसृति की समस्त सुन्दरता को समेट लेगा। और कुछ देना तो वह जानता ही नहीं। उस की कामना कितनी उच्छृंखल किन्तु वह स्वयं कितना संकीर्ण है ! अपनी स्वच्छन्द उड़ान के लिये उसने नारी पर कृत्रिम समाज के बंधन डाल रखे हैं।

मस्तक पर प्रखर किरनों का अनुभव करते हुए एक ओर हो जाते हैं।

हरिसेन का प्रवेश)

हरिसेन—फाग के इस पुण्य पर्व पर आज सम्राट अकेले क्योंकर खड़े हैं ?

समुद्रगुप्त—कई वर्षों से निरन्तर रक्त की होली खेल रहा हूं मंत्री। यह अबीर और गुलाल तो मुझे आज फीके लगते हैं। और फिर मैं अकेला क्योंकर हूं कविवर ? वह देखो ऊषा पिचकारी भर कर अशोक वृक्ष की पत्तियों से छनता हुआ रंग मुझ पर फेंक रही है।

हरिसेन—आप की वीरता और कविता आपस में होड़ ले रही हैं महाराज।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन करके) कांची के महाबोधि-विहार से एक भिक्षुणी सम्राट से मिलना चाहती है।

समुद्रगुप्त—(हरिसेन से) मंत्री, देखो भिक्षुणी सम्राट से क्या चाहती है। आवश्यकता हो तो उसे मुझ से मिलने दिया जाए।

हरिसेन—जैसी आज्ञा महाराज।

[दूत तथा हरिसेन का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त—(पास ही खिले हुए एक फूल को तोड़ते हुए) काञ्ची का महाबोधि विहार। वहीं कृष्णा के तीर पर मैं ने उसे देखा था। (अंगूली से पड़ी मुद्रा को देख कर)

मुद्रा। (ठंडी सांस भर कर) वह शायद हमारा पहला और अन्तिम मिलन था।

(भिक्षुणी का हरिसेन के साथ प्रवेश)

समुद्रगुप्त —भगवान बुद्ध के उस पावन प्रदेश से यहां कैसे आई भिक्षुणी ?

भिक्षुणी इस विकल विश्व को जहां त्राण मिलता है वहीं से आई हूं सम्राट।

समुद्रगुप्त— मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ?

भिक्षुणी—महाश्रमण वसुबन्धु किसी अज्ञात स्थान की ओर चले गये हैं। सुना है उन्होंने विहार को सदा के लिए छोड़ दिया है।

समुद्रगुप्त—विहार को छोड़ दिया है ? ऐसा क्यों ?

भिक्षुणी—भगवान जाने क्या होने वाला है। उनके प्रस्थान करने से पूर्व तथागत की पाषाण-प्रतिमा हिल उठी थी। मैंने अपनी आंखों से देखा। शकुन अच्छे नहीं सम्राट। और उसी रात मुझे एक स्वप्न आया। आकाश में एकाएक लालिमा छा गई। एक चक्रवात पृथ्वी के गर्भ से उठा। शोणित की एक रेखा उसके साथ साथ चली। जाने मानव की घायल आत्मा हो।

समुद्रगुप्त —तुम्हारा स्वप्न सचमुच भयङ्कर है भिक्षुणी।

भिक्षुणी—आप भारत के एकछत्र अधिपति हैं। राष्ट्र पर विपत्ति की घटाएं छा रही हैं।

समुद्रगुप्त—चिन्ता मत करो भिक्षुणी। मै हर विपत्ति के प्रति जागरूक हूँ। राष्ट्र के लिए मेरे भुजबल प्रलय तक से टक्कर ले सकते हैं।

भिक्षुणी—मैं सम्राट को केवल इस अपशकुन से परिचित कराने आई थी।

समुद्रगुप्त—भिक्षुणी, तुम भगवान तथागत को प्रसन्न करो; पाटलीपुत्र के बौद्ध-विहार में जा कर विश्राम करो।

[भिक्षुणी का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त—बुद्ध के पावन उपदेश को उसके अनुयायी भूल गए हैं।

हरिसेन—बुद्ध धर्म का पतन आरम्भ हो चुका है महाराज।

समुद्रगुप्त—महाश्रमण का पलायन एक साधारण घटना नहीं।

मंत्री—हमें सावधान रहना चाहिये।

हरिसेन—आपके एक इंगित पर राष्ट्र के सपूत धरा को हिला देंगे महाराज।

पट परिवर्तन

चौथा दृश्य

समय—सायंकाल

(कांची के राज भवन का मन्त्रणागार। महाराज विष्णुगोप अपने मन्त्री के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। नरेश के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ हैं। वे कभी २ अपने आसन से उठ कर बेचैनी में घूमने लग जाते हैं)

विष्णुगोप—स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है अमात्य। यह हमारी जन्मभूमि है। हमारा देश। वसुधा के इस शस्य श्यामल खण्ड पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं हो सकता।

अमात्य—(मुस्करा कर) जिस के गट्टे में साहस और भुजाओं मे बल है महाराज, वह त्रिभुवन का स्वामी है। शक्ति का ही दूसरा नाम अधिकार है। प्रत्येक काननचारी पर शक्तिशाली सिंह का ही अधिकार है।

विष्णुगोप—अब स्वतंत्रता की रक्षा शक्ति से की जाएगी मंत्री। दक्षिणपथ के वीरों का खौलता हुआ रक्त सम्राट समुद्रगुप्त की विजय लालसा के उन्माद को ठंडा कर देगा।

अमात्य—(मुस्करा कर) मुझे सन्देह है महाराज।

विष्णुगोप—(आवेश में) मन्त्री।

अमात्य—जबतक दक्षिणपथ की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में नहीं पिरोया जाता, विजय असम्भव है।

विष्णुगोप—दक्षिण राज्य संघ बन जाने के पश्चात अब उस एक सूत्रता में कोई शङ्का नहीं रह गई। सम्राट समुद्रगुप्त को प्रति वर्ष कर देते समय मेरे हृदय में प्रतिशोध की लपटें उठती हैं मन्त्री।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—(अभिवादन करके) अवमुक्त राज्य से दूत आया है महाराज।

विष्णुगोप—उसे आने दो द्वारपाल।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

अमात्य—अवमुक्त राज्य पर कोई विपत्ति आ पड़ी है महाराज। कई वर्षों से दक्षिण के नरेश विलासिता के तूफ़ान में बह रहे हैं।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) महाराज ने नृपेश की सेवा में यह पत्र भेजा है। (पत्र देता है)

विष्णुगोप—(पत्र पढ़ते हुए) पल्लवराज, दक्षिण राज्यसंघ के सब नरेशों ने आगामी युद्ध के लिये आप को ही नेता चुना है। आप के कथनानुसार गोदावरी के पूर्वी तट पर संघ की सेनाओं का प्रदर्शन होगा। मगधराज के विरुद्ध सैन्यसंचालन आप को ही करना होगा। सम्राट

को कर देना बंद करके दक्षिण के स्वाधीन साम्राज्य की घोषणा कर दीजियेगा।

मैं हूँ,

अवमुक्त नरेश नीलराज

दूत को सम्बोधित करके, दूत अपने महाराज से कहना कि हम पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व डाला गया है किन्तु राष्ट्र के स्वाधीनता संग्राम का यह नेतृत्व हम सहर्ष स्वीकार करते है।

(दूत का प्रस्थान)

विष्णुगोप---मंत्री।

अमात्य—महाराज।

विष्णुगोप---सेनापति को आदेश दे दो कि आज हम स्वयं सेनाओं का निरीक्षण करेंगे। और मगध-राज को कर न भेज कर स्वाधीनता की घोषणा कर दो।

अमात्य---जैसी आज्ञा महाराज (प्रस्थान)

विष्णुगोप---सम्राट समुद्रगुप्त, तुमने हमारे राष्ट्र की चेतना को कुचलने का प्रयास किया है। किन्तु क्या तुम दक्षिण साम्राज्य के इस प्रलयङ्कर सेनानी के ताण्डव से बच सकोगे ? मगधराज, स्वाधीनता के इस महायज्ञ में काञ्ची के युवक युवतियाँ अपने प्राणों की आहुतियाँ डालने के लिये व्याकुल हैं। (ऊपर देख कर) प्रभु तू कितना दयामय है ! मातृभूमि की सेवा करने का कैसा पुण्य अवसर दिया है हमें !

(नेपथ्य से गान। महाराज विष्णुगोप ध्यान पूर्वक सुनते हैं)

मानव, मानव से प्यार करो।

ये नभचुम्बी प्रासाद धवल,
यह सरस सरस धरणी श्यामल,
ये वसुधा के सुन्दर कण कण
कहते हैं सब प्रतिदिन प्रतिपल-

तुम मानव का सत्कार करो।
मानव, मानव से प्यार करो।

कहती है धरती सागर से,
लिपटी सरिताएं भूधर से,
नारी के तरल मदिर लोचन,
कहते हैं मन्द मधुर स्वर में,

तुम मानव का शृंगार करो।
मानव मानव से प्यार करो॥

[कञ्चन का प्रवेश]

कञ्चन—ओह ? पिता जी ?

विष्णुगोप—कञ्चन तू तो साकार कविता बनी चली जा रही है। दिन रात गाने और आखेट खेलने के सिवाय कुछ काम ही नहीं।

कञ्चन—आखेट खेलना तो मैं ने छोड़ दिया है पिता जी। उस दिन भगवान बुद्ध की पाषाण प्रतिमा कांप उठी थी। जाने कह रही हो संसार हिंसा की लपटों से

दग्ध होने वाला है । आप नहीं जानते पिता जी, महाश्रमण वसुबन्धु विहार को छोड़ कर चले गये हैं ? अशान्ति ! अशान्ति ! आकाश से धरा तक अशान्ति का ही राज्य है । मानवता कराह उठी है ।

विष्णुगोप—मानव के अधिकार का निर्णय होने वाला है बेटी ।

कञ्चन—वह क्योंकर पिता जी !

विष्णुगोप—सम्राट समुद्रगुप्त की महत्वाकांक्षा का स्वर्णिल स्वप्न दक्षिण की इस वीरप्रसू में टूट कर रहा जाएगा ।

कञ्चन—(सोचने का नाट्य करके) समुद्रगुप्त ! महत्वाकांक्षा कैसी महाराज ?

विष्णुगोप—समस्त भारत पर गरुड़ध्वज लहराने का चिर स्वप्न ।

कञ्चन—वह तो कभी का पूर्ण हो चुका है ।

विष्णुगोप—उसे आज उतार कर फेंक दिया गया है । काञ्ची ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी है । अब यहाँ कौन सी पताका फहराएगी—इस का निर्णय समराङ्गण में होगा । कञ्चन, देखो तुम इस राज्य की एक मात्र उत्तराधिकारिणी हो । तुम्हें भी इस युद्ध में लड़ना होगा ।

कञ्चन—किन्तु·····

विष्णुगोप—नहीं कञ्चन । (प्रस्थान)

कञ्चन—सम्राट समुद्रगुप्त के विरुद्ध लड़ना होगा । (मुक्तामाल की ओर देख कर) इन्हों ने कहा था यह तुम्हारी

निर्भीकता का पुरस्कार है। पत्नी के आहत होने पर उन्हों ने मुझे क्षमा कर दिया था। वे महत्वाकांक्षी क्योंकर हुए! (सोच कर) किन्तु मैं उन के सामाने समराङ्गण में क्योंकर जा सकूंगी! और यदि ऐसा हुआ कि मेरा·····(किंकर्तव्य विमूढ़ होकर) ओह मैं क्या सोच रही हूं? मुझे लड़ना होगा। मातृभूमि की रक्षा के लिये मेरे प्राणों की आवश्यकता है। मैं जरूर लड़ूंगी। मैं अपने कर्तव्य पथ से नहीं गिर सकती।

पट-परिवर्तन

पाँचवां दृश्य

समय—मध्यान्ह

[महाबोधिविहार का खुला आंगन। आम के वृक्ष के नीचे दो भिक्षु राहुल तथा आनन्द। राहुल तने का सहारा लिये सो रहा है। आनन्द अंगड़ाई ले कर खड़ा हो जाता है।]

आनन्द—(पेड़ में लटकते हुए आम को देख कर) **आम। (जोर से) आम।** (आनन्द तेज़ी से राहुल के पास जा कर उसे लिपट कर) **अरे ओ अफीमची कहीं के, वह देख आम।**

राहुल—(आंखें खोल कर) **एं! आम! ले आ तोड़ कर।**

आनन्द—**ले आऊं!** (ऊपर देख कर) **यदि कहीं पाँव फिसल गया तो क्या होगा?**

राहुल—**तो निर्वाण को प्राप्त होगे मित्र।**

आनन्द—**जो काम तथागत वर्षों की साधना से नहीं कर सके वह एक ही क्षण में हो जाएगा। किन्तु राहुल इस पुण्य अवसर से तुम्हीं क्यों चूक रहे हो!**

राहुल—**त्रिपिटक पढ़ते २ तुम्हारी खोपड़ी खराब हो गई है।** (खड़े हो कर) **मैं नगर में भिक्षा के लिये जा रहा हूं।**

आनन्द—**भिक्षु के लिये नगर के प्रति अधिक आकर्षण उचित नहीं। तुम संघ की मर्यादा को भंग कर रहे हो राहुल**

राहुल—**विहार के इस नीरस जीवन में महाश्रमण के समान मुझे भी शान्ति नहीं मिली आनन्द!**

आनन्द—तुम्हारी शान्ति को मैं जानता हूं। महाश्रमण की तरह तू भी अब किसी के मोह-पाश में फंस रहा है। तभी तो दिन में चार २ चक्कर लगते हैं नगर के। यहाँ क्या नहीं है रे, जो इस दोपहरी में भिक्षा लेने जाएगा ?

राहुल— यहाँ है ही क्या ! नगर में स्वर्ग है स्वर्ग।

आनन्द—अधिक मत कहो राहुल। मेरे हृदय पर हाथ रख कर देखो। एक टीस सी उठ रही है।

(तीसरे भिक्षु रुद्र का प्रवेश)

रुद्र—अरे कैसी टीस रे ! [शून्य में देख कर] महाश्रमण के चले जाने के पश्चात भिक्षु-समुदाय पतन की ओर चला जा रहा है। मन्दिर की प्रतिमा के साथ जाने सारा संसार काँप उठा।

आनन्द—[व्यंग्य से] महाश्रमण के जाने में कुछ भेद है भिक्षु। तुम क्या जानो इन बातों को !

रुद्र—छिः ! छिः ! इन छींटों से आकाश धूमिल हो उठेगा। महायुद्ध की अग्नि भभकने वाली है भिक्षु। काञ्ची नरेश देश की संगठित सेनाओं का संचालन करेंगे। तलवार के इस प्रलयङ्कर पानी में विहार डूब जाएगा। तुम डूब जाओगे।

[आनन्द और रुद्र भय से पीछे हट जाते हैं। रुद्र का प्रस्थान]

आनन्द—[हाथ हिला कर] क्या औंधी खोपड़ी है ? संघ डूब जाएगा। तुम डूब जाओगे।

राहुल—युद्ध अवश्य होगा। सम्राट समुद्रगुप्त की प्रलयवाहिनी को काञ्ची नरेश के लिये रोकना कठिन हो जाएगा।

आनन्द—युद्ध होगा ?

राहुल— हाँ।

आनन्द—तब तो हमें यहाँ से कहीं दूर.....दूर चले जाना चाहिए।

राहुल— तुम इतने भीरु हो आनन्द ? तुम्हारे लिये इस संसार में कहीं स्थान नहीं।

आनन्द—भीरु नहीं हूं भाई। मैं तो केवल भगवान के अहिंसा के उपदेश का पालन कर रहा हूँ। मेरे हाथ में तलवार आ जाए तो मैं युद्ध क्षेत्र में गाजर मूली तक को काट दूं

राहुल-पागल कहीं का ? युद्ध क्षेत्र में गाजर मूली कहाँ से आई।

आनन्द—एँ ? गाजर मूली ? ओह मेरा मतलब है.....। तुम मेरा मतलब नहीं समझे।

राहुल—तुम्हारा मतलब है तुम शत्रु को गाजर मूली की तरह काट दोगे।

आनन्द—यह। यह बात। तुम समझदार हो राहुल। मैं कहता हूँ तुम समझदार हो। कहीं सम्राट को पता चलु जाए तो बन्दी गृह में डाल दे।

राहुल—अरे जा जा बन्दी गृह के बच्चे।

आनन्द—ऊँ हूँ। समझे नहीं। सम्राट को चिन्ता पड़ जाए कि

कांची नरेश के पास ऐसी बेढब खोपड़ी है।

[भामा का गाते हुए प्रवेश]

आनन्द—राहुल, भिक्षुणी आ रही है। अब तू भिक्षा लेने के लिये नगर चल दे।

[राहुल का त्योरी चढ़ा कर प्रस्थान]

भामा—[गाती है]

अब क्यों रूठे जीवन संगी ?

तुम्हें याद हैं वह बरसातें.
वह यमुना के तट की रातें।
होले होले जहाँ श्याम से,
होती थीं राधा की बातें।

सच कहना तारों के नीचे कैसीं घड़ियाँ थीं वे सगीं ?

तुम्हें कसम उन बरसातों की,
ओस भरी कालीं रातों की।
तुम्हें कसम देती हूँ प्रियतम,
उन गुजरी बीती बातों की।

जब तुम कहते थे तू मेरी मैं तेरा हम जीवन संगी।

क्या वह इक सपना था हाय,
मैं ने जिस में साजन पाय ?
इक नादान पुजारिन ने,
इक पत्थर पर जलकण बरसाए।

दो दिन मधु ऋतु में देखा है मैं ने भी इक जीवन संगी।

अब तो मुझ में जान नहीं है,
जीने का अरमान नहीं है।
आँखों से दो आँसू टपके,
इतना भी सामान नहीं है।

अब तो मैं हूँ या बस ग़म हीं ग़म है मेरा जीवन संगी॥

आनन्द—कौन रूठ गया भामा ?

भामा—आनन्द ? देखते नहीं संसार रूठ गया, देवता रूठ गये। क्या तुम नहीं जानते कि एक विकराल युद्ध होने वाला है ? कई दिनों से महाराज विष्णुगोप गोदावरी के तीर पर सेना का निरीक्षण कर रहे हैं।

आनन्द—युद्ध ? होने दो भामा। इस युद्ध का परिणाम हम पहले से जानते हैं।

भामा— क्या ?

आनन्द—हम जीतेंगे।

भामा— हम कौन ?

आनन्द—हम कौन ? हम। हम आनन्द। (अपनी ओर संकेत करता है)

भामा— किन्तु युद्ध तो होगा कांची नरेश और समुद्रगुप्त में।

आनन्द—हैं ? यह बात ? तो फिर मुझे सोच लेने दो। (ठहर कर) किन्तु इस से क्या होता है ? जीतना तो हमीं को है भामा।

भामा—जब आग और लोहे की वर्षा होगी तो तुम्हारा कहीं निशान भी न मिलेगा भिक्षु।

आनन्द—आग और लोहे की वर्षा ? ऐसी बातें मत करो ! हिंसा की चर्चा से विहार का नियम टूटता है। तथागत की प्रतिमा कांपती है और मेरे हृदय में धक् धक् धक् न जाने क्या होने लगता है।

[भामा खिलखिलाती है]

आनन्द—तो क्या तुम इसे उपहास समझती हो ?

[भामा फिर हंसती है]

आनन्द—भामा तू हँसती है तो इस कानन में वसंत आ जाता है।

भामा—किन्तु वह वसंत पतझड़ में बदलने वाला है आनन्द।

आनन्द—वह क्यों ?

भामा—सम्राट समुद्रगुप्त की सेनाएँ दक्षिण प्रदेश को रौंधती हुई चली जाएँगी। भूतल पर शोणित की नदियाँ बहेंगी। प्रकृति थर्रा उठेगी। प्रलय का सामान जुट रहा है।

आनन्द—दक्षिण की सेनाएँ उस प्रलय प्रवाह को न रोक पाईं तो क्या होगा ?

भामा—विलासिता की दलदल में फंसे हुए दक्षिण नरेश सम्राट की विजयवाहिनी को क्या रोकेंगे ?

आनन्द रुद्ध कह रहा था—विहार डूब जाएगा। तुम डूब

जाओगे।

भामा—हिंसा के इन अंगारों में सब भस्म हो जाएगा। मानवता को हिंसा की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए ही भगवान ने यह खेल रचा है।

पट-परिवर्तन

छटा दृश्य

समय-प्रातःकाल

[पाटली पुत्र का राजभवन। महाराज समुद्रगुप्त सिंहासन पर आसीन हैं। हरिसेन तथा दूसरे अमात्य यथा स्थान बैठे हैं]

हरिसेन—भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक आज गरुड़ध्वज लहरा रहा है महाराज। महासागर की उत्ताल तरंगें तथा हिमादि के गगन चूमते हुए श्रृङ्ग आप के ही शुभ-यश का अमर गान कर रहे हैं। आप की इस महान विजय के उपलक्ष में आज उत्सव मनाया जा रहा है।

समुद्रगुप्त—विजय किस पर ? उत्सव कैसा ? मैं तो स्वदेश का एक तुच्छ सेवक हूँ। भारत में एक अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने का मेरा चिर स्वप्न था। ये छोटे छोटे राज्य भारत के मान चित्र पर अभिशाप मात्र थे। जनता का शोषण करने वाले थे, नरेश जिस स्वाधीनता की रक्षा का दम भरते हैं उसके पीछे झांक रही होती है उनकी अपनी विलासिता। किन्तु अभी तक मेरा वह स्वप्न पूरा नहीं हुआ मंत्री।

हरिसेन—वह कैसे महाराज ?

समुद्रगुप्त—कुछ स्फुलिंग अभी अवशेष हैं। उन्हें बुझाना होगा।

अमात्य—वे आप की अमिधारा में डूब कर ठंडे होजाएंगे।

समुद्रगुप्त—युद्ध भूमि से लौटे मुझे अभी दिन ही कितने हुए हैं अमात्य ? किन्तु शस्त्रों की झंकार सुनने को मन आतुर हो रहा है। तलवार पकड़ने के लिये हाथ बेचैन हो उठे हैं।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—[अभिवादन करके] सिंहल द्वीप से एक दूत आया है महाराज।

समुद्रगुप्त—उसे आने दो द्वारपाल।

[द्वारपाल का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त—सिंहल नरेश मेघवर्ण का राजदूत।

[राजदूत का प्रवेश]

राजदूत—[प्रणाम करके] महाराज मेघवर्ण सम्राट की सेवा में शुभेच्छा का संदेश भेजा है। उपहार रूप में भगवान बुद्ध की यह स्वर्ण प्रतिमा दी है।

समुद्रगुप्त—[प्रतिमा लेकर] कितनी सुन्दर भेंट है ? [दूत से] हम सिंहल नरेश की इस भेंट को सादर स्वीकार करते हैं।

राजदूत—उन्होंने सम्राट से प्रार्थना की है कि गया में बुद्ध का एक मन्दिर बनवाने की अनुमति प्रदान की जाए।

समुद्रगुप्त—हमें यह अनुमति देते हुए प्रसन्नता होती है दूत ! हम रुद्र के उपासक प्रत्येक धर्म का उचित सम्मान करते हैं। भगवान बुद्ध की वाणी की अमर मन्दाकिनी में अशान्त मानव स्नान कर सके। इस की अनुमति

देते हुए किसी भी सम्राट को गर्व हो सकता है।

दूत—(प्रणाम करते हुए) आप की जय हो महाराज। (प्रस्थान)

अमात्य—आप की उदारता अद्वितीय है।

समुद्रगुप्त—भिक्षुसंघ का नैतिक पतन हो रहा है। सिंहल नरेश की योजना कितनी सामयिक है।

(नर्तकी का प्रवेश)

हरिसेन—उत्सव में भाग लेने के पश्चात् नर्तकी रम्भा सम्राट् के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करेगी।

रम्भा—आप कलाकार हैं तथा कला के पारखी भी। इसी लिये साहस बटोर कर आ पहुँची हूं महाराज।

समुद्रगुप्त—रम्भा अपनी नृत्य तथा गायन कला का ऐसा प्रदर्शन करो कि सृष्टि में जो कुछ जड़ है वह चेतन हो जाय। तुम्हारी पगध्वनि के साथ यह विश्व थिरकने लग जाय। अपने नाद के आरोह अवरोह से सत्य, शिव और सुन्दर की सृष्टि करो।

रम्भा—(नृत्य करती है)

मैं तुम्हारी किन्तु तुम मेरे कहाँ ?
सूर्य्य किरणों से धरा के
नित्य प्रति रजकण सजाता।
खेलती मिट्टी में जिनका,
था कभी अम्बर से नाता॥
किन्तु किरणें सूर्य्य की हैं सूर्य्य किरणों का कहाँ ?
मैं तुम्हारी.....कहाँ ?

सिंधु अपनी लहर माला,
चन्द्र-किरनों पर लुटाए ।
चूमतीं नभ, लोरियाँ दे,
कर जिन्हें मारुत सुलाए ॥

हाय लहरें सिंधु की हैं सिंधु लहरों का कहाँ ?
मैं तुम्हारी.....कहाँ ?

यामिनी अपने सितारे,
नीलनभ में छोड़ जाती ।
ज्योती की लड़ियाँ सुनहरी,
किस तरह पगली लुटाती ॥

किन्तु तारे रात के हैं रात तारों की कहाँ ?
मैं तुम्हारी.....कहाँ ?

समुद्रगुप्त—(हरिसेन को सम्बोधित कर के) रम्भा कला की साकार प्रतिमा है मंत्री । इसे उचित पुरस्कार मिलना चाहिये ।

हरिसेन—जैसी आज्ञा महाराज ।

द्वारपाल—[अभिवादन कर के] काँची नरेश का एक दूत यह पत्र देकर चला गया है महाराज । [पत्र देता है]

[प्रस्थान]

समुद्रगुप्त—[पत्र पढ़ते हुए] मगध राज, इस पत्र द्वारा दक्षिण पथ के सभी नरेश अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करते हैं । इसे आप युद्ध की चुनौती मत समझियेगा । किन्तु यदि आप हमारी स्वाधीनता के अधिकार को

मानने के लिये उद्यत नहीं तो इसका निर्णय युद्ध में ही हो सकेगा।

कांची नरेश विष्णुगोप

(क्षण भर के लिये सन्नाटा)

समुद्रगुप्त —(सोचते हुए) विष्णुगोप, तुम वीर हो, देश भक्त हो। किन्तु दक्षिण के जिन नरेशों की ओर से तुम ने यह चुनौती मुझे दी है उन स्वार्थी भेड़ियों पर मुझे अंकुश रखना ही होगा। मुझे उन लाखों प्राणियों की स्वाधीनता के अधिकार की रक्षा करना है जिनकी रक्त पर ये नृपति अपने स्वप्नों के भवन निर्माण करते हैं! अपनी विलासिता की समाग्री जुटाने के लिये उन्हें नारकीय यंत्रणाएं सहने के लिये छोड़ देते हैं। कांची नरेश, काश तुम यह पत्र लिखने से पहले समझ पाते कि केवल अखण्ड भारत का आज ही अक्षुण्ण रह सकता है। समझ पाते कि केवल विजय की आकांक्षा ही मुझे युद्ध की ओर अग्रसर नहीं करती। भारतवर्ष की एकता के मेरे चिर-स्वप्न को तुम तोड़ने का प्रयत्न करने चले हो? [ठहर कर] किन्तु कांचीनरेश अब तो समराङ्गण में तुम्हें समुद्रगुप्त से युद्ध करना होगा। [मंत्री को] मंत्री।

हरिसेन महाराज।

समुद्रगुप्त सेनापति को आज्ञा दो युद्ध के लिये तैय्यार रहने की

आदेश दे दो।

हरिसेन—जैसी आज्ञा।

(हरिसेन तथा अमात्य का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—(रम्भा की ओर देख कर)रम्भा तुम अब तक यहीं खड़ी हो ? जाओ ताण्डव नृत्य करो। मारू गान गाओ। रुद्र का तीसरा नयन खुलने वाला है नर्तकी। तुम भी अपने गीतों से प्रलय का सृजन करो।

(रम्भा का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त संगीत और कविता में जीवन का निखार है तथा युद्ध में मृत्यु का महत्व। जीवन और मृत्यु दोनों महान् हैं। युद्ध के पश्चात् संगीत की ललित कला और संगीत के पश्चात् शस्त्रों की झंकार। रुद्र का डमरू बजता है तो संगीत का सागर उमड़ आता है। उस स्वर लहरी के साथ त्रिलोचन के पांव हिलते हैं। तांडव के पेचों में त्रिभुवन उलझ जाता है। (सोच कर) इधर कई दिनों से वीणा की मूर्छना में हृदय की मधुर धड़कनों को झंकृत किया है। आज शक्ति के स्रोत भूतेश्वर के चरणों के घुंघरू झनझना उठे हैं।

(पट परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

समय-प्रातःकाल

(कञ्चन एक बड़े दर्पण के सामने पुरुषों जैसे केश बनाए खड़ी कवच पहन रही है। यदा कदा दर्पण में देखकर प्रसाधन की त्रुटियों का सुधार कर लेती है। साथ साथ गा रही)

कञ्चन---(गाती है)

मैं सरिता हूँ अलबेली।
मैं गिरि से लिपटी कई बार, तूफानों में भी खेली॥
मेघों से मेरा प्यार सघन।
नाचा करते मुझ पर जलकण॥
मैं महामिलन का राग लिये,
चलती रहती उन्मन उन्मन॥
मैं आदि काल से कवि के मन की सुन्दर सजल पहेली।
मैं सरिता हूँ अलबेली॥
सावन के घन जब आते हैं,
मुझ पर मोती बरसाते हैं।
प्रातः सायं रवि शशि आकर,
मस्तक पर तिलक लगाते॥
यह विधि का है वरदान सखी, मैं दुलहिन नई नवेली।
मैं सरिता हूँ अलबेली॥

(दर्पण में देखती हुए) कौन कहता है नारी अबला है ? उस के हृदय में जहां प्यार की कोमल तृषा है, वहां अठखेलियाँ लेता हुआ शक्ति का तूफान भी है। वह नर की अर्चना करने में अपना सर्वस्व तक दे देती है। पुरुष समझता है वह उसकी परिचारिका है, उस के विलास का साधन है। किन्तु वह नहीं जानता कि नारी शक्ति का अजस्र स्रोत है। (एकाएक मुक्तामाल को देख कर उसे छिपाते हुए) इसे छिपाए रखना होगा। यह मेरी निर्भीकता का पुरस्कार है।

(तुषार का प्रवेश)

तुषार—कञ्चन।

कञ्चन—आओ तुषार।

तुषार—अरी ? यह पुरुषों जैसे वस्त्र पहन रखे हैं। पहचानी भी नहीं जाती।

कञ्चन—इसी लिये पहने हैं कि पहचानी न जाऊं। बस अब जीवन पर्य्यन्त ऐसे वस्त्र पहनने होंगे।

तुषार—जीवन पर्य्यन्त ? ऐसा क्यों ?

कञ्चन—नहीं जानती ? मैं कांची के राजसिंहासन की एक मात्र उत्तराधिकारिणी हूँ। मुझे युवराज बन कर पुरुष की निर्बलताओं पर आवरण डालना होगा। नारी बनी रहकर मैं वह सब कैसे कर सकूंगी। मुझे युद्धस्थल में जा कर लड़ना होगा। पिता जीका आदेश है।

तुषार—महाराज वीर हैं। शौर्य्य-प्रदर्शन के इस अवसर पर वे कञ्चन को पीछे क्यों रहने देते ? किन्तु तुम युद्धस्थल में क्योंकर जाओगी ? सम्राट की सेनाओं से कैसे लड़ोगी ?

कञ्चन—एक बार धनुषबाण उठा लिया तो विपक्ष में चाहे त्रिपुरारी ही क्यों न आ जाएँ, उन से भी लड़ना होगा।

तुषार—युद्ध ! युद्ध की यह पुकार मानव को पागल किये दे रही है। पुरुष युद्ध चाहता है वह तड़पती हुई लाशों को देखकर खिलखिला उठता है। वह कभी नहीं सोचता कि जिन का रक्त बहाया जा रहा है उन का दोष क्या है।

कञ्चन—महाभारत के युद्ध में अर्जुन इसी संकट में पड़ गया था।

तुषार—तो क्या यह उसकी भूल थी ?

कञ्चन—भूल ही तो थी। इस संसार में न कोई किसी को मारता है, न मारा जाता है। आत्मा अमर है सखी।

(तूर्य-नाद)

कञ्चन—तुरही बज रही है। शत्रु की सेना आ पहुँची। मेरा कर्तव्य मुझे पुकार रहा है। लाओ मेरा धनुष-बाण। पूज्य पिता जी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। और तुषार तुम भी तैय्यार हो जाओ। तुम्हें भी पुरुष के वेश में मेरे साथ रहना होगा।

(तुषार का प्रस्थान)

(काँची नरेश का प्रवेश)

विष्णुगोप—तुम्हें सैनिक के इस अलौकिक वेश में देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता है । कांची की सब युवतियों में जिस दिन राष्ट्रीयता की ऐसी भावना जाग्रत होगी उस दिन किसी शत्रु को इस पुण्यस्थली की ओर देखने का साहस न होगा ।

कञ्चन—(मुस्करा कर) मैं अब युवराज हूँ पिता जी ।

विष्णुगोप—आज की प्रतिमा है तू कञ्चन । सहस्रों युवराजों का साहस ले कर तू राष्ट्र की बलिवेदी की ओर जा रहा है ।

कञ्चन—तुम्हारी बर्जा थी पिता जी ।

विष्णुगोप—शत्रु की सेना विंध्यप्रदेश को पारकर नर्मदा के तट पर आ पहुंची है ।

कञ्चन—नर्मदा के तट पर ?

विष्णुगोप—दो ही चार दिन में दक्षिण की उत्तरी सीमाओं पर तूफानी झरनों के समान बल खाती हुई हमारी सेनाओं से मगध के सैनिकों की टक्कर होगी । सुना है सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं युद्ध में लड़ रहे हैं । तैयार रहो कंचन मुझे अब के सब कुछ दांव पर लगा देना है ।

(प्रस्थान)

कञ्चन--(सोचने का नाट्य कर) सम्राट स्वयं लड़ रहे हैं । मगधराज

तुम एक बहुत बड़े राज्य के स्वामी हो। जल और थल की सेनाओं से तुम किसी भी प्रदेश पर छा सकते हो। किन्तु हम जिस आत्माभिमान के लिये रण में कूद रहे हैं उसके लिये मरना तो हमें आता ही है।

(तुषार का पुरुष के वेश में प्रवेश)

कञ्चन—(तुषार को देख कर) आओ मेरे समीप आओ तुम्हें इस वेश में देखकर वीरभूमि कांची आज फूले नहीं समाती। हाथ में धनुष पकड़ो। कंधे पर तूणीर रखो।

तुषार—किन्तु मैं तो युद्ध कला से अपरिचित हूँ कंचन।

कञ्चन—वह कौन सी कला है जिस से नारी अपरिचित है। भारत की नारी हाथ में तलवार पकड़ लेती है तो दुर्गा बन जाती है। वीणा पर अंगुली रख ले तो सरस्वती का रूप धारण कर लेती है। पुरुष का दामन पकड़ती है तो लक्ष्मी बन जाती है। वह सब कुछ है तुषार। उसे पीछे न रहना चाहिये। आओ चलें।

(तूर्य-नाद)

(पटाक्षेप)

★—★—★

दूसरा अंक

पहला दृश्य

समय-प्रातःकाल

(पाटलीपुत्र में नगर के समीप नदी के किनारे भिक्षुणी बुद्ध की पाषाण प्रतिमा बना रही है। आकाश में मेघ छाए हुए हैं। कभी कभी पवन का एक झोंका आ कर जल को प्रकंपित करके चला जाता है।)

भिक्षुणी—(प्रतिमा को बनाते हुए उस की ओर देख कर) मैं ने तुम्हें भगवान बनाया। तुम एक शिला-खण्ड से अधिक थे ही क्या ? लोग तुम्हें अपने पैरों से रौंधते हुए चले जाते थे और आज (पागलों की हंसी हंस कर) आज मानव तुम्हारी पूजा करेगा। तुम्हारे चरणों पर नित्य नए प्रसून चढ़ाएगा। कैसी छलना है ! (मुद्रा बदल कर) तुम हँसते हो ! कलाकार एक ही चोट से तुम्हें रुला भी सकता है। अब मैं तुम्हें हंसने न दूंगी। उस दिन···(डर कर) उस दिन तुम बहुत विकट हंसी हँस गए थे। अब तुम्हारा हँसना रोना मेरे हाथ में है। (हंस कर) आज तक मानव ने भगवान की लीला देखी। आज भगवान को मानव की महिमा देखना है।

(सुनीता का अपनी सखी श्यामा के साथ प्रवेश । दोनों ने मटके उठाए हुए हैं ।)

सुनीता—भिक्षुणी, मूर्ति बना रही है ?

श्यामा—बहुत सुन्दर है ।

भिक्षुणी—क्या कहा ? (ज़ोर से हंसकर) इतना कुरूप, इतना बिकराल, इतना घिनौना ! तुम इसे सुन्दर कहती हो ?

सुनीता—भगवान कभी कुरूप नहीं होते भिक्षुणी ।

भिक्षुणी—(हंस कर) भगवान ! (गम्भीर मुद्रा से) अरे अबोध मानव, तू समझता है भगवान को चिरसुन्दर बना कर तू ने अपना कल्याण किया है । अपने ही बनाए हुए भगवान के हाथ में खेलने वाले मूर्ख ! क्या तू कभी सोचता है कि तुम्हें पाप के पंक में उलझा कर तुम्हारा भगवान हंसता है ।

श्यामा—वह कैसे भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—कैसे ? देखा है जाकर ? दक्षिण की पुण्यभूमि में मानव का रक्तपात हो रहा है किन्तु भगवान के मुख पर अब भी एक विजय की मुस्कान है ।

श्यामा—दक्षिण के युद्ध का कोई समाचार मिला भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—(मूर्ति की ओर संकेत कर के) इसी से पूछो न ? इसी ने मानव के मन में युद्ध की प्रेरणा की है । असुरों का सृजन करके यह कई बार सुरों की ओर से लड़ा है । और मानव ! मानव भी एक पहेली है ।

(गाने लगती है। इर्द गिर्द कई बालक आ कर खड़े हो जाते हैं)

(गीत)

यह मानव एक पहेली है।
इस के मन में है दावानल,
आंखों में है करुणा का जल।
अब हंसता है, अब रोता है,
यह बदला करता है प्रतिपल।
इस के दिल में जो चमक रही वह किरन बड़ी अलबेली है।
यह मानव एक पहेली है॥
यह सृष्टि रचाने वाला है,
यह प्रलय मचाने वाला है।
बिजली से, बादल पानी से,
यह कब घबराने वाला है।
जो विपदा भूतल पर आई हंस हंस कर इसने झेली है।
यह मानव एक पहेली है।
बन देव अर्चना करवाए।
दानव बन पृथ्वी थर्राए।
यह स्वयं सुरों के असुरों के।
नित नए वेश में आ जाए।
विधि औ' मानव ने कई बार ऐसी ही क्रीड़ा खेली है।
यह मानव एक पहेली है।

भिक्षुणी—देखो बच्चो, तुम जानते हो सम्राट समुद्रगुप्त महाराज विष्णुगोप से युद्ध कर रहे हैं ?

सब—हम जानते हैं।

भिक्षुणी—अच्छा बताओ उन में से कौन जीतेगा ?

एक—सम्राट् समुद्रगुप्त ।

भिक्षुणी—(हंस कर) नहीं । तुम कुछ नहीं जानते ।

सुनीता—तो क्या···(भय का नाट्य)

भिक्षुणी—घबराओ मत ग्रामवधू ! दोनों जीतेंगे ।

(सब हंसते हैं)

श्यामा—दोनों क्योंकर जीत सकते हैं ?

सब—दोनों कैसे जीतेंगे भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—(ऊपर देखकर) वह देखो । (सब आकाश की ओर देखते हैं) काल-मेघों में दो सैनिक । उन की तलवारें झनझना रही हैं ।

सब—कहाँ भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता ? वह प्राणों की बाजी लगा कर एक दूसरे पर टूट पड़े । ओह ! यह क्या हो रहा है ? मेघ काँप रहे हैं । वह देखो एक की तलवार दूसरे की गर्दन पर ।

सब—कहाँ भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—तुम नहीं देख सकते इस भयंकर दृश्य को ? कितना चालाक है भगवान । वह तुम्हें ऐसा नाटक क्यों देखने देने लगा । (सहसा ऊपर देख कर) एक ही झटके से सैनिक का धड़ पृथ्वी पर आ गिरा । (बालकों की ओर देख कर) अब इन दोनों में से

विजय किस की हुई ?

सब—मारने वाले की ।

भिक्षुणी—सब यही कहते हैं । वह देखो इस विजय पर बिजली मुस्करा रही है । वृक्ष तालियाँ दे रहे हैं । किन्तु मैं कहती हूँ विजय दोनों की है । काश मानव यह समझ पाता ।

(गाते हुए प्रस्थान । बालक भी साथ साथ जाते हैं)

सुनीता—पगली हो गई है यह भिक्षुणी । (ऊपर देख कर) कितनी देर हुई घर से निकले ! चलो पानी भर लाएँ ।

[दोनों पानी भरने लगती हैं । पानी भर कर सुनीता एड़ी माजने लगती है तथा श्यामा नदी के जल में पाँव डाल कर बैठ जाती है]

श्यामा—कितना अच्छा गाता है भिक्षुणी ?

सुनीता—इस के मन पर दक्षिण के युद्ध का बोझ सा पड़ गया है श्यामा । तभी पगली सी हो गई है ।

श्यामा—यह मुआ युद्ध समाप्त होने में नहीं आता । ये जब से रणस्थल में गये हैं, रात भर नींद नहीं आती । भिक्षुणी की बातों से तो मैं काँप उठी हूँ ।

सुनीता—जब से समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठे हैं देश को युद्ध से अवकाश ही नहीं मिला ।

श्यामा—(किसी को आते देखकर पहचानती हुई) सुनीता तुम्हारे स्वामी आ रहे हैं । अच्छा मैं तो चलती हूँ ।

[प्रस्थान । विदूषक का प्रवेश । सुनीता खड़ी हो जाती है]

विदूषक—(हांपते हुए) ढूंढते ढूंढते यहां आया हूँ सुनीता । कैसा मनोरम स्थान है यह । (नदी को ओर देखता है)

सुनीता—किन्तु आप के आने की कोई सूचना तो नहीं थी । युद्ध का समाचार क्या है ?

विदूषक—यह महायुद्ध है सुनीता । इस का परिणाम तो भगवान ही जानता है । दोनों ओर के सहस्त्रों सैनिक मारे जा चुके हैं । बारहों घन्टे तलवारों की झंकार सुनाई देती है । महाराज विष्णुगोप की सेना तो जाने अंगद का पांव बन कर डट गई है । (दोनों नदी के तीर पर बैठ जाते हैं)

सुनीता—सम्राट स्वयं लड़ रहे होंगे ?

विदूषक—सुरेन्द्र के समान सम्राट अपने अश्व पर चढ़कर स्वयं लड़ते हैं । रात को शिविर में बैठ कर दूसरे दिन के युद्ध की योजना तैय्यार करते हैं । शत्रु के जिस सैन्यखण्ड पर उन के तीरों की बौछाड़ होती है वहाँ हाहाकार मच जाता हैं ।

सुनीता—वे वीर हैं । अवश्य जीतेंगे ।

विदूषक—जीत हार का अनुमान लगाना अब हमारे बस का नहीं सुनीता । [ऊपर देख कर] बूंदें गिरने को हो रही हैं । चलना चाहिये

(दोनो उठते है ।प्रस्थान ।)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

समय—सायंकाल

(अपने शिविर में सम्राट समुद्रगुप्त घूम रहे हैं। उनके मुख पर चिन्ता की गहरी रेखा अंकित है)

समुद्रगुप्त—कितना भयङ्कर युद्ध है। दो मास होने को आए। सहस्त्रों सेनानी वीरगति को प्राप्त हो चुके। कांची नरेश के शौर्य की अमर कहानी दक्षिण की इन चट्टानों पर सदा के लिए अंकित रहेगी। रणक्षेत्र में देश के उस वीर सैनिक को जूझते हुए देख कर स्तम्भित रह जाता हूँ। आंखों में आग, मस्तक पर ओज, उभरा हुआ वक्ष—कितना भला लगता है यह सब! (ठहर कर) मगध-राज, तुम्हारी तलवार हिलने ही भूतल कांप उठता था। तुम्हा। असिधार में शत्रु की नारियों का ईंगुर बह जाया करता था (सोच कर) किन्तु यह सब कब तक चलेगा? युद्ध का निर्णय तो करना ही होगा। कल से सैन्य संचालन मैं स्वयं करूंगा।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन कर के) गुप्तचर आया है महाराज।

समुद्रगुप्त—आने दो।

(गुप्तचर का प्रवेश)

समुद्रगुप्त—कहो गुप्तचर, क्या समाचार लाए ? कांची की सेनाओं का उत्साह अभी ढीला नहीं हुआ ?

गुप्तचर—नहीं महाराज । वे प्रसन्न हैं । उन के योद्धा देश की बलिवेदी पर हस हंस कर न्योछावर हो रहे हैं ।

समुद्रगुप्त—ठीक है । वीर कभी हतोउत्साह नहीं होते ।

गुप्तचर—कांची के सैन्य-दल को पराजित करना तब तक असम्भव है जब तक पीछे से उन पर आक्रमण न किया जाय । दक्षिण संघ की उन सेनाओं की बागडोर वेंगी नरेश तथा अवमुक्त राज के हाथ है । वे अब तक विलासिता की निन्द्रा में पड़े है । एक साधारण आक्रमण भी उन के पाँव उखाड़ सकता हैं । ऐसा होने से महाराज विष्णुगोप का स्वयं दक्षिण की ओर जाना पड़ेगा तथा हमारी सेना आगे बढ़ सकेगी ।

समुद्रगुप्त—किन्तु हम ऐसा नहीं करेंगे गुप्तचर । तुम अब जा सकते हो ।

(अभिवादन के पश्चात गुप्तचर का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—हम अपनी शक्ति से विजय प्राप्त करेंगे । अपने भुजबल से शत्रु को पराजित करेंगे । कांची नरेश तो क्या, कल हम कैलाश पति के महाकपाल भी तोड़ देंगे । कल मगध की सेना नहीं, प्रलय के मेघ चलेंगे, दावानल जल उठेगा । (द्वारपाल से) द्वारपाल !

(द्वारपाल का प्रवेश तथा अभिवादन)

समुद्रगुप्त—हमारी वीणा लाओ। आज हम दीपक राग गाएंगे

(अभिवादन के पश्चात् द्वारपाल का प्रस्थान)

(मंत्री हरिसेन का प्रवेश)

हरिसेन—शिविर में इस समय महाराज अकेले क्या सोच रहे हैं ?

समुद्रगुप्त—द्वारपाल की प्रतीक्षा में हूँ। आज अन्तर से वीणा बजाने की प्रेरणा हो रही है।

हरिसेन—किन्तु अभी युद्ध की प्रगति पर परामर्श करना है महाराज।

समुद्रगुप्त—कल सेना की बागडोर मेरे हाथ में होगी मंत्री। हार जीत का निर्णय हो जायगा।

हरिसेन—मैं जानता हूं आप इस विलम्ब से क्षुब्ध हो उठे हैं। किन्तु आपने देखा हमारी सेना का ऐसे महायुद्ध में भाग लेने का यह पहला अवसर है। दक्षिण की प्राकृतिक सीमाएँ भी हमारा पथ रुद्ध कर रही हैं।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन कर के) वीणा उपस्थित है महाराज।

(वीणा देकर प्रस्थान)

हरिसेन—यदि उद्दण्डता न हो तो कुछ प्रार्थना करूं ?

समुद्रगुप्त—ठहरो मंत्री मुझे वीणा पर दीपक का अलाप करने दो तुम कहोगे रणस्थल में भी कोई गाता है। मैं कहता हूँ प्रलय का सृजन करते समय त्रिलोचन के नूपुर भी संगीत की ताल पर ही हिलते हैं। (वीणा झंकृत करते

हुए) तुम भी सुनो कविवर । (गाते हैं)

मेरे दीपक तू भी जल ।
नभ में जलती है घन माला ।
जलती है सागर में ज्वाला ।
तारे जलते हैं प्रतिपल ।
मेरे दीपक तू भी जल ॥
उपवन जले धरणि जल जाए ।
जले गगन पाताल जलाए ॥
जल शशिधर के लोचन जल ।
मेरे दीपक तू भी जल ॥

हरिसेन—आप का मुखमण्डल दीप्त हो उठा महाराज । अब छोड़ दीजिए इस वीणा को । सच कहते हैं आप संगीत से ही जीवन और मृत्यु की प्रेरणा होती है ।

समुद्रगुप्त—(वीणा को कोने में रखते हुए) अब कहो मंत्री । दीपक गान के पश्चात् युद्ध की वार्ता में आनन्द आएगा ।

(द्वारपाल आ कर दीपक जलाता है । सेनापति का प्रवेश तथा अभिवादन)

समुद्रगुप्त—कौन ? सेनापति ? आओ । आज हमारी सेनाओं की प्रगति कैसी है ?

सेनापति—वहीं खड़ी है महाराज । कई दिनों से नदी के दोनों किनारों पर दोनों सैन्यदल खड़े हैं ।

समुद्रगुप्त—कल नदी को पार करना होगा ।

सेनापति—किन्तु नदी में बाढ़ आ रही है महाराज और शत्रु का दुर्ग दृढ़ है ।

समुद्रगुप्त—कल सेना की बाग डोर मेरे हाथ में रहेगी सेनापति ! पूर्व की पहाड़ियों के समीप नदी का विस्तार तथा गहराई कम है। वहीं से नदी को पार कर लो।

सेनापति—गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि शत्रु की दक्षिणी सीमाओं पर चोट करना अनिवार्य है।

समुद्रगुप्त—हमने भी ऐसा ही सुना है। किन्तु...

हरिसेन—इसका प्रबन्ध मैंने कर लिया है महाराज !

समुद्रगुप्त—क्या ?

हरिसेन—सिंहलनरेश की सेनाओं द्वारा दक्षिण के रत्नाद्वार पर आक्रमण।

समुद्रगुप्त—धर्मयुद्ध में बाधा डालने वाली यह योजना मुझे अच्छी नहीं लगी। ऐसा कृत्य हमारी वीरता पर एक व्यंग्य है। क्या ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता ?

हरिसेन—किन्तु ऐसा तो महाभारत के युद्ध में स्वयं कृष्ण ने भी किया था। कर्ण और भीष्म की मृत्यु राजनीति की ऐसा ही चालों के प्रमाण हैं और फिर हमारी सेनाएँ तो अन्तराष्ट्रीय नियमों का पालन करती हुई शत्रु पर आक्रमण करेंगी।

सेनापति—ऐसा करने से युवराज और महाराज विष्णुगोप अलग हो जाएंगे। इसी में हमारी विजय का मर्म है।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन करके) सिंहल द्वीप से एक राजदूत आया है महाराज।

समुद्रगुप्त—आने दो।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

हरिसेन—ऐसा प्रतीत होता है कि सिंहल नरेश ने हमारे संदेश का आदर किया है।

(दूत का प्रवेश तथा अभिवादन)

समुद्रगुप्त—कहो दूत तुम्हारे महाराज स्वस्थ तो हैं ?

दूत—सकुशल है महाराज। उन्होंने कहा है कि कल प्रातः सिंहल की सेनाएं दक्षिण में शत्रु के रक्षाद्वार पर पहुंच जायंगी।

समुद्रगुप्त—दूत हमारी ओर से अपने महाराज का धन्यवाद करना

(दूत का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—तुम्हारी इस राजनैतिक चाल का हम अनादर नहीं करते मंत्री। देखो अब रात अधिक बीत गई है। सो जाना चाहिये। कल नवप्रभात में मिलेंगे।

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

समय-सायंकाल

[कांची के सैन्य-शिविर के समीप एक मन्दिर । महाराज विष्णुगोप बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख बैठे है । सैनिक का वेश है । केशों पर रणक्षेत्र के रजकण दिखाई देते हैं । बाहर आंधी चलने से मन्दिर के कपाट हिलते हैं]

विष्णुगोप—(अंजलिबद्ध) भगवान, तुम्हारे आदेश का ही पालन कर रहा हूं । साम्राज्य में शान्ति की स्थापना के लिये ही यह हिंसा का व्रत लिया है । शत्रु ने हमारी स्वाधीनता को छीनने का प्रयास किया है । इस महायज्ञ में कितने ही प्राणों की आहुतियां डाली जा चुकी हैं । आप के अनुग्रह से शान्ति के आहर्ता के लिए काञ्ची का दुर्ग दुर्भेद्य हो गया है । किन्तु जयश्री अभी तक चंचलता से दोनों ओर निहार रही है । आप के आशीर्वाद से ही मातृभूमि की रक्षा हो सकेगी (उठकर मन्दिर के द्वार के समीप आ जाते हैं) आंधी चल रही है । आज का युद्ध कितना भयङ्कर था । शत्रु ने अपनी सैन्य-रचना में कुछ परिवर्तन किया है ।

[गुप्तचर का प्रवेश तथा अभिवादन]

गुप्तचर—महाराज की जय हो ।

विष्णुगोप—आओ गुप्तचर। क्या समाचार लाए ?

गुप्तचर—आज के विकराल युद्ध में सम्राट् स्वयं सैन्येश का काम कर रहे थे। दूर पश्चिम में जा कर शत्रुदल ने नदी को पार कर लिया। वहीं राजकुमारी कञ्चन...

विष्णुगोप—(क्रोध में) गुप्तचर।

गुप्तचर—(भयभीत होकर) महाराज।

विष्णुगोप—राजकुमार कहो। वह राजकुमारी नहीं। उसके बाणों मे शत्रु दहला उठा है। उसे कञ्चन न कहकर अखिल पुकारो।

गुप्तचर—जैसी आज्ञा महाराज। तो वहीं राजकुमार अखिल की सेना से उनकी सीधी टक्कर हो गई। शत्रु के दल को आहत करते हुए राजकुमार आगे बढ़ा किन्तु...

विष्णुगोप—(भय से) किन्तु ? कहो गुप्तचर। क्या हुआ आगे ?

गुप्तचर—वह निशाने से चूक गया। सम्राट काल के समान तीव्र गति से बढे चले आरहे थे। अचानक उनका अश्व एक बहुत बड़े पत्थर से टकरा कर गिरने को हो गया। उसे संभालते समय उनकी तलवार एक वृक्ष में उलझ गई। राजकुमार ने लपक कर बाण चढ़ाया किन्तु दूसरे ही क्षण हाथ रोक कर पीछे हट गए। राजकुमार ने यह अच्छा नहीं किया महाराज।

विष्णुगोप—गुप्तचर ! वीरों की परिभाषा में निहत्थे शत्रु पर वार करना कायरता है।

गुप्तचर यदि आज ऐसा हो जाता तो विजय हमारी थी महाराज।

विष्णुगोप—विजयलक्ष्मी तो रणबांकुरों के चरणों में लिपटी रहती है गुप्तचर।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

द्वारपाल—अवमुक्त नरेश का एक दूत आया है महाराज।

विष्णुगोप—उसे शीघ्र लाओ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

विष्णुगोप—गुप्तचर तुम जाओ।

(गुप्तचर का प्रस्थान। दूत का प्रवेश तथा अभिवादन)

विष्णुगोप—राजदूत! अवमुक्त नरेश सकुशल तो हैं?

दूत—समाचार अच्छा नहीं महाराज। सिंहल की सेनाएँ दक्षिण के रक्षा-द्वार पर आज दिन भर आक्रमण करती रहीं। कल से आप को या युवराज को उस द्वार की रक्षा करनी होगी।

विष्णुगोप—(सोचते हुए) सिंहल की सेनाएँ! (दूत से) राजदूत अवमुक्तराज से कहना हमें उनका संदेश मिल गया है।

(अभिवादन के पश्चात् राजदूत का प्रस्थान)

विष्णुगोप—द्वारपाल!

(द्वारपाल का प्रवेश तथा अभिवादन)

विष्णुगोप—सेनापति को बुलाओ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

विष्णुगोप—सिंहल की सेनाओं का आक्रमण ! यह इस युद्ध की एक असाधारण घटना है। (ऊपर देख कर) बवंडर उठ रहा है। भगवान जाने क्या होने वाला है। युवराज को दक्षिण में सिंहल नरेश की सेनाओं से लड़ने के लिये भेजना होगा। किन्तु अवमुक्तराज ? वह सिंहल की उस छोटी सी टुकड़ी को भी न रोक सके !

(सेनापति का प्रवेश तथा अभिवादन)

विष्णुगोप—युद्ध की नई प्रगति का अध्ययन किया है सैन्येश ?

सेनापति—खूब किया है महाराज। दो स्थानों पर शत्रु नदी पार कर चुका है। किन्तु दोनों स्थानों पर उसे कितने ही सैनिकों तथा युद्धसामग्री से हाथ धोना पड़ा है।

विष्णुगोप—कल की सैन्य-रचना को बदल दो सेनापति। सिंहल की सेनाएं दक्षिण के रक्षाद्वार पर आक्रमण कर रही हैं।

सेनापति—सिंहल की सेनाएँ ? किन्तु यह अन्तराष्ट्रीय विधान के प्रतिकूल है महाराज।

विष्णुगोप—यही बात सिंहल नरेश को आग और तलवार से बताई जाएगी। कल युवराज अरिवल को साथ लेकर तुम उस द्वार की रक्षा करो। लंका के उस विभीषण की सेनाओं को महासागर तक खदेड़ दो। मैं सम्राट् की सेनाओं से अकेला युद्ध करूंगा।

सेनापति—किन्तु आप...

विष्णुगोप—मेरी चिन्ता मत करो सेनापति। मृत्यु तथा विजय दोनों महान् हैं। इन दो में से सैनिक को एक का ही चुनाव तो करना है (ऊपर देखकर) आंधी तेज होती जा रही है। सेनापति अब तुम अपने शिविर में जाकर कल की व्यूहरचना पर विचार करो।

सेनापति—जैसी आज्ञा महाराज।

[प्रस्थान]

विष्णुगोप—शत्रु चालाक है वह हमें चारों ओर से घेर लेना चाहता है। तो क्या कञ्चन को सम्राट् पर वार कर देना चाहिये था ? राजनीति में ऐसे कृत्य का निषेध नहीं है। किन्तु (मूर्ति की ओर देख कर) हम धर्म-युद्ध लड़ते हैं। (सोच कर) विजय महान् है। किन्तु वीरतापूर्वक लड़ते हुए रणस्थल में मर जाना उस से भी महान है।

(नेपथ्य में गाने की ध्वनि--'मैं सज कर रण में जाऊं !!')

कञ्चन आ रही है, जीवन और मृत्यु से खेलवाड़ करने वाली वीर बाला।

(कञ्चन तथा तुषार का प्रवेश। दोनों सैनिकों के वेश में हैं)

विष्णुगोप—कञ्चन ?

कञ्चन—नहीं पिता जी ! युवराज अरिवल।

विष्णुगोप—भूल जाता हूँ बेटी। युद्ध-भूमि में तुम्हारी वीरता

की कहानियां सुनता हूँ तो युवराज अरिवल की मूर्ति मेरी आंखों के सामने नाच उठती है। किन्तु दूसरे ही क्षण अरिवल के स्थान पर कञ्चन रह जाती है। कञ्चन-वही कञ्चन। नारी के आभूषण पहन कर दिन भर गाने और आखेट खेलने वाली कञ्चन। उस समय मैं सिहर उठता हूँ।

कञ्चन—क्यों पिता जी ?

विष्णुगोप—सोचता हूँ कि तू कञ्चन न हो कर युवराज अरिवल ही क्यों न हुई। किन्तु छोड़ो इन बातों को ! तुम कितना अच्छा गाना गा रहे थे अरिवल ! सुनाओं मुझे भी। कल तुम्हें दक्षिण के रक्षा-द्वार पर सिहल की सेनाओं से लड़ना होगा।

कञ्चन—सैनिक का काम है युद्ध करना और जूझते हुए मर जाना। (सोच कर) किन्तु आप सम्राट से अकेले लड़ेंगे। यह कैसे होगा पिता जी ?

विष्णुगोप—चिन्ता मत करो। कर्तव्य पुकार रहा है। मातृभूमि पुकार रही है। गाओ वही तराना।

कञ्चन—(गाती है)

मैं सज कर रण में जाऊं।
पल्लू में बाँधू माला।
हाथों में खप्पर काला।
केशर का तिलक लगाऊं।
मैं सज कर रण में जाऊं॥

मैं आग लगा दूं जल में।
मैं प्रलय मचा दूं पल में॥

मैं भैरव नाद सुनाऊं
मैं सजकर रण में जाऊं॥

बस मृत्यु नाचती आए।
भूतल सारा जल जाए॥

जब दुर्गा मैं बन जाऊं।
मैं सज कर रण में जाऊं॥

विष्णुगोप—तू सचमुच दुर्गा है। (ऊपर देख कर) अंधेरा हो चला है। अब शिविर में लौटना चाहिए।(कञ्चन तथागत के चरण छूने लगती है। महाराज विष्णुगोप का प्रस्थान)

तुषार—सिंहल नरेश भी युद्ध में भाग ले रहा है।

कञ्चन—विजय लक्ष्मी करवटें ले रही है। युद्ध का पाँसा बदल रहा है। कल पिता जी को सम्राट् की सेना से कितना विकट युद्ध लड़ना होगा। तो क्या आज... (सोचने का नाट्य)

तुषार—आज तुम से भूल हुई है कञ्चन। आज ही युद्ध का निर्णय हो सकता था।

कञ्चन—जाने क्यों बाण चलाते चलाते मेरे हाथ रुक गए। सोचने लग गई कि यदि तीर हाथ से निकल गया तो दूसरे क्षण सम्राट् पृथ्वी पर लोटते दिखाई देंगे। उस चित्र की कल्पना से मेरा हृदय तीव्रगति से धड़कने लगा। अब कई बार सोचती हूँ क्या वह मेरी भूल थी? मुझे उस मधुर क्षण की याद आ जाती है जब उन्होंने मुझे क्षमा किया था।

(पट- परिवर्तन)

चौथा दृश्य

समय-मध्याह्न

(पाटलीपुत्र का राजपथ। दो नागरिक एक पेड़ के नीचे वार्तालाप कर रहे हैं।)

पहला—महाराज विष्णुगोप को परास्त करने के लिए वज्राङ्की का पराक्रम चाहिये।

दूसरा—सम्राट् ने सर्वस्व दाँव पर लगा रखा है किन्तु युद्ध का निर्णय होने में नहीं आता।

पहला—काञ्ची का युवराज मगध की सेना का ध्वंस करता हुआ प्रलय की गति से आगे बढ़ रहा है। सहस्रों सेनानी मौत के घाट उतर चुके हैं। सम्राट की जिगीषा ने आर्य्यावर्त को युद्ध का केन्द्र बना दिया है।

दूसरा—इस प्रलय-जल के उतर जाने के उपरान्त मानवता निखर कर उठेगी।

पहला—कल कोई कह कर था कि सिंहल नरेश ने अपनी सेना सम्राट् की सेवा में भेज दी है।

दूसरा—जनश्रुति है कि युवराज कई दिनों से दक्षिण में सिंहल की सेनाओं को पीछे धकेलते चले जा रहे हैं।

(तीसरे नागरिक का प्रवेश)

तीसरा—जनश्रुति ही नहीं कटु सत्य है।

पहला—क्या ?

तीसरा—युद्ध का निर्णय होने वाला है नागरिक। अभी अभी एक संदेश पाटलीपुत्र की प्रजा के नाम आया है कि महाराज शीघ्र लौटेंगे !

दूसरा—तो क्या महाराज विष्णुगोप परास्त कर दिये गये ?

तीसरा—समराङ्गण में लड़ते लड़ते वे वीरगति को प्राप्त हुए। अब युवराज अकेले सभी मोरचों पर लड़ रहे हैं। किन्तु शत्रु सेना का उत्साह भंग हो चुका है।

पहला—किन्तु युद्ध का निर्णय तो काञ्ची नरेश के निधन से ही हो गया।

तीसरा—उनका शरीर तीरों की बौछारों से छलनी हो चुका था किन्तु मातृभूमि का वह वीर सैनिक फिर भी लड़ता चला जा रहा था। इस मृत्यु से सम्राट् समुद्रगुप्त व्याकुल हो उठे हैं। इस दुःखान्त नाटक ने विजय की प्रसन्नता को शोक में बदल दिया है।

दूसरा—जिस प्रसून को अपने आप तोड़ डाला उसे अब आंसुओं से सींचने से क्या लाभ ? उपवन के तरु को एक ही झकोरे से गिराकर पवन अब ठंडी आहें भरता है।

तीसरा—सम्राट् विजय चाहते थे। काञ्ची नरेश के देहान्त का दुःखद समाचार सुनने के लिये वे तैय्यार न थे। ठीक उसी प्रकार जैसे राम लङ्केश के चरणों में खड़े हुए थे, सम्राट् महाराज विष्णुगोप के समीप पहुंचे। कांची

नरेश की आंखों में एक विजय की मुस्कान थी।
सम्राट् के चेहरे पर दुःख और निराश की झलक।

(नेपथ्य में गाने की मन्द ध्वनि)

पहला—(बाहर देखकर) भिक्षुणी आ रही है।

दूसरा—पगली है।

तीसरा—जब देखो महाश्रमण और महाराज विष्णुगोप की बात करती है। इस युद्ध ने इसे पागल कर दिया है।

[भिक्षुणी का गाते हुए प्रवेश]

भिक्षुणी— आंखों में सावन घिर आया।
हीरों का हार बिखेरो मत।
मुक्ता-मणियों को तोड़ो मत।
बरसों पीछे बरसात हुई,
बरस पीछे सावन आया।

आंखों में सावन घिर आया

मैं दोनों हाथ लुटाती हूँ।
मोती मटरें बरसाती हूं।
हंस हंस लूटो दुनिया वालों,
किस्मत से यह दुर्दिन आया।

आँखों में सावन घिर आया॥

पहला—आज इतनी उदासीन क्यों हो भिक्षुणी?

भिक्षुणी—उदासीन? (हंस कर) देखो मैं कैसे खिलखिला कर हंसती हूं

दूसरा—युद्ध का कुछ समाचार आया ? सुना है महाराज विष्णु-गोप वीरगति को प्राप्त हुए।

भिक्षुणी—(मुद्रा बदल कर) कितना ही कुछ सुना है इन दिनों नागरिक। अब तो श्रुतिपुट मूंद कर बैठ जाने को जी चाहता है।

तीसरा—युद्ध की गति अभी धीमी नहीं पड़ी ? जयलक्ष्मी किस ओर झुक रही है ?

भिक्षुणी—युद्ध ? (खिलखिला कर) कितना नरसंहार हुआ है इस युद्ध में ! क्या तुम जयलक्ष्मी का मूल्य इन अगणित शवों की संख्या पर आंकते हो ? क्या विजयलक्ष्मी इतनी महंगी वस्तु है ? मानवता रक्त के सागर में लथ पथ पड़ी है और नरेश विजयोत्सव मना रहे हैं। ऐसी विजय पर थूक देना चाहिये नागरिक।

पहला—तू सच कहती है भिक्षुणी। विजय की देवी वीरों के शवों पर मुस्कराया करती है।

भिक्षुणी—और इस नरसंहार का उत्तरदायित्व किस पर है ? इस हत्याकांड का पाप किस के सिर पर है। विजयलालसा के शिकार उन दुर्मद नृपतियों पर जो मानव के जलते हुए कंकाल पर अपने प्रासादों की नींव उठाते हैं। कहाँ हैं वह ? जोर से खिलखिलाते हुए तथा गाते हुए प्रस्थान)

पहला—बात पते की कह जाती है भिक्षुणी।

दूसरा—भगवान बुद्ध की सच्ची पुजारिन है यह

तीसरा—(ऊपर देखकर) संध्या होने को आई। चलना चाहिये।

(तीनों का प्रस्थान तथा दो भिक्षुओं का प्रवेश)

पहला—मैं कहता हूं महाश्रमण का पलायन कोई साधारण घटना नहीं थी। दक्षिण की रंगभूमि पर होने वाले हिंसा के इस खेल को वे पहले से जानते थे।

दूसरा—सुना है आज कल अजन्ता की गुफाओं में शान्ति की खोज में भटक रहे हैं।

पहला—महाराज विष्णुगोप का निधन धर्म्म पर एक घातक चोट लगा गया है।

दूसरा—भिक्षुणी कहती थी युवराज अभी तक सम्राट् की सेनाओं से लड़ रहे हैं।

दूसरा—युवराज वीर है। मातृभूमि के लिये वह भी प्राणों की बलि चढ़ा देगा।

(भिक्षुणी का प्रवेश)

भिक्षुणी-ऐसा मत कहो भिक्षु। ऐसा मत कहो। तुम धर्मका अपमान कर रहे हो। ले दे के वही कुछ तो बच पाया है। नृशंस मानव ने अपने आप खण्ड-प्रलय का आह्वान किया है और अब तो खेल समाप्त हो गया। राष्ट्रीयता के नाम पर कितना उत्पात हुआ। अब मगध के प्रासादों में दीवाली मनाई जाएगी। जिसने जितना अधिक खून बहाया उसके वृक्ष पर उतनी ही फूल मालाएँ सजेंगी।

पहला—सुना है इस युद्ध से सम्राट् क्षुब्ध हो उठे हैं। काञ्ची नरेश की मृत्यु से उन के हृदय पर एक आघात

पहुंचा है ।

भिक्षुणी—(खिलखिला कर हंसती हुए तथा सहसा ऊपर देख कर) सांयकाल होने को आया । मुझे वहां पहुँचने में कई दिन लगेंगे । सुना है महाश्रमण अजन्ता के समीप एक मन्दिर में रहते है । उनके चले जाने से ही यह रक्त पात हुआ है ।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पांचवाँ दृश्य

समय-प्रातःकाल

अपने शिविर में सम्राट् समुद्रगुप्त एक खिड़की के सम्मुख खड़े निकलते हुए सूर्य की आभा निरख रहे हैं]

समुद्रगुप्त—युद्ध समाप्त हो गया। किन्तु इस हृदय में निरन्तर चलने वाले युद्ध का अन्त अभी नहीं हुआ। विजय भी एक प्रवंचना है। काञ्चा नरेश की मृत्यु इस दिल पर कभी न पुरने वाला घाव छोड़ गई है। विधि के हाथ का खिलौना यह मानव भी एक समस्या है। जिस वह मंजिल समझता है वह जीवन-यात्रा का एक छोटा सा पड़ाव भर रह जाती है। अपने मन को बहलाने का कैसा साधन रचा है भगवान ने!

[हरिसेन का प्रवेश तथा अभिवादन]

समुद्रगुप्त—[मुड़कर] आओ मंत्री। युवराज अभी तक समरांगण में जूझ रहा है क्या?

हरिसेन—शत्रु के पांव उखड़ चुके हैं महाराज। किन्तु युवराज की तलवार अभी तक विद्युत् के समान चमक रही है। कांचा का सेनापति घायल हो चुका है। कुछ ऐसा लगता है जाने युवराज भी महाराज विष्णुगोप के समान...।

समुद्रगुप्त—ऐसा मत कहो मंत्री। कांची के राज भवन में आशा की एक ही तो चिनगारी बच पाई है। तुम उसे भी बुझा दोगे तो इस निशा का विहान कब होगा ?

हरिसेन—किस निशा का महाराज ?

समुद्रगुप्त—यह जो मेरे हृदय में है। (ठहर कर) युवराज वीर हैं। मुझे उसको कांची के राजसिंहासन पर बिठाना है। यदि उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई तो मेरे लिये यह संसार शून्य हो जाएगा। (मंत्री की ओर देख कर) देखा नहीं था उस दिन तुमने ? मेरा अश्व मुझे धोका दे रहा था। महाभारत के युद्ध में महाराज कर्ण भी एक दिन ऐसे ही संकट में पड़ गये थे। और अर्जुन ने उन पर तीर चलाने में कोई संकोच न किया। किन्तु दुनिया ने देखा युवराज के हाथ एकाएक रुक गए।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन कर के) सेनापति आए हैं महाराज।

समुद्रगुप्त—उन्हें शीघ्र आने के लिये कहो।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—सेनापति अच्छा समाचार लाए हों।

(सेनापति का प्रवेश तथा अभिवादन)

समुद्रगुप्त—आओ सेनापति ! युद्ध की प्रगति कैसी है ?

समुद्रगुप्त—समाप्त हो गया ? और युवराज ? युवराज जीवित है न ?

सेनापति—हाँ महाराज। युवराज को बन्दी बना लिया गया है।

समुद्रगुप्त—कहाँ है वह। (हरिसेन की ओर देख कर) उसे सादर लिवा लाओ मंत्री।

(हरिसेन तथा सेनापति का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—(खिड़की में खड़े होकर सूर्य्य की ओर देख कर) आज सूर्य की किरनों में किसी की मुस्कान का आभास मिल रहा है। ऊषा के पायलों की झंकार से आज विश्व नाच उठा है। (सामने देखकर) दुःख की महानिशा का अवसान हो चला है। मानस में चांदनी छिटक रही है।

(युवराज अरिवल को लेकर सेनापति और हरिसेन का प्रवेश। युवराज ने सैनिक का वेश पहन रखा है। चेहरे पर शान्ति के चिन्ह हैं किन्तु आँखों में निडरता है।)

समुद्रगुप्त—(समीप आकर ध्यानपूर्वक देखते हुए) युवराज अरिवल। तुम्हारी वीरता को देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है किन्तु काञ्ची नरेश की मृत्यु पर हमें उतना ही खेद है।

अरिवल—मेरे समीप आप के हर्ष और खेद का कोई मूल्य नहीं।

समुद्रगुप्त—किन्तु तुम्हारे हृदय का मानसिक क्लेश मेरे मन की

वीणा को क्यों झंकृत कर रहा है ? युद्ध जीत और हार के लिये तो नहीं लड़े जाते राजकुमार । मानवता को किसी अभिशाप से मुक्त करने के लिये ही भगवान का तांडव होता है । (युवराज की ओर संकेत कर के) अच्छा अब तुम क्या चाहते हो अरिवल ?

अरिवल—(व्यंग्य से) आप क्या दे सकते हैं ?

समुद्रगुप्त—मैं मृत्यु को जीवन नहीं दे सकता युवराज । किन्तु तो भी मैं बहुत कुछ दे सकता हूं । क्या तुम दक्षिण के महासाम्राज्य को संभालना चाहोगे ?

अरिवल—वह प्रलयकांड तो कब का समाप्त हो चुका । उस भूखण्ड पर तो मेरे पांव अब बढ़ार भी न बढ़ेंगे । मैं उस साम्राज्य की ओर देखना भी नहीं चाहता । और यह जान लो सम्राट् मैं हाथ में भिक्षा का पात्र ले कर नहीं आया ।

समुद्रगुप्त—तुम ने मुझे एक दिन धर्मयुद्ध में प्राणदान दिया था।

अरिवल—वह मेरी कमजोरी थी ।

समुद्रगुप्त—क्या तुम उस भूल पर पछता रहे हो ?

अरिवल—पछताना चाहता हूं ।

समुद्रगुप्त—किन्तु पछता नहीं सकते । (खिलखिला कर हंसते हैं ।

अरिवल—मैं युद्ध का बंदी हूं । मुझे उसका दण्ड मिलना चाहिये ।

समुद्रगुप्त—तो क्या तुम्हारी यही इच्छा है ?

अरिबल—मेरी इच्छा ? मेरी इच्छाओं की पूर्ति आप के हाथ में नहीं है। मैं चाहता हूं प्रागुदण्ड या फिर पिता की मृत्यु का प्रतिशोध !

समुद्रगुप्त—[विस्मय से] प्रतिशोध ? किन्तु प्रतिशोध तो भगवान के हाथ में है। प्रतिशोध तो मानव के मन की एक निकृष्ट भावना है। तो भी मैं तुम्हारी इस इच्छा की पूर्ति का भरसक प्रयत्न करूंगा। [सेनापति से] सेनापति, युवराज को पाटलीपुत्र के राजभवन के एक अंश में रहने दिया जाए।

[अभिवादन के पश्चात् सेनापति का युवराज अरिबल को लिए हुए प्रस्थान।]

समुद्रगुप्त—मंत्री, देखा तुमने कितना निर्भीक है यह युवक !

हरिसेन—यह पैतृक देन है महाराज।

समुद्रगुप्त—कहीं उसकी लीला समाप्त न हो जाए, भगवान ने मानव के मन में प्रतिशोध की आग जला दी। यह एक ऐसी चिनगारी है जो पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक सुलगती चली जाती है। यही मानव के पतन का कारण बन जाती है। युवराज के मन में उठती हुई यह प्रतिशोध की लपटें बुझानी ही होंगी।

हरिसेन—अपनी इच्छा प्रकट कर के युवराज एक चेतावनी सी दे गया है।

समुद्रगुप्त—चेतावनी से हम घबराने वाले नहीं। मैं युवराज को पतन के गर्त्त में नहीं जाने दूंगा। अच्छा मंत्री तुम

अब मगध लौटने की तैय्यारी करो। प्रजा हमारी प्रतीक्षा कर रही होगी।

[हरिसेन का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त—मगध छोड़े कितने दिन हो गए! आज लौटते समय हृदय में कितना उल्लास है। (कुछ सोचकर) सारे भारत पर आज गरुड़ध्वज लहरा रहा है। भारत अखण्ड है। भारत अजेय है; स्वदेश की प्यार भरी चितवन के लिये मनुष्य कितना बेचैन हो जाता है। [ठहर कर] किन्तु युवराज अरिवल दक्षिण की ओर लौटना नहीं चाहता। वह कितना निडर है। प्रतिशोध चाहता है। उसके ओठों से निकले हुए शब्द जाने परिचित से लगते हैं।

(पट-परिवर्तन)

छटा दृश्य

समय-संध्या

(अजंता की गुफाओं के समीप एक घाटी पर दो भिक्षु वार्तालाप कर रहे हैं। पास ही पत्थर काट कर बनाई गई शिव की मूर्ति है)

पहला—कैसा मनोरम स्थान है! भारत की कला का प्रदर्शन इसी भूभाग में हो सकता था।

दूसरा—डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरनें जाने अपना हृदय उडेल कर इस रम्य घाटी से विदा मांग रही हैं। संसार के कोलाहल से दूर निर्झर के समान निष्पाप ये गुफाएं मानव को कितनी शान्ति प्रदान करती हैं।

पहला—तभी तो महाश्रमण वसुबन्धु कई दिनों से यहां निवास कर रहे हैं। तारों की छांह में रात रात भर इसी सरोवर के किनारे बैठे रहते हैं। साधना-लीन-तपस्वी के समान किसी से उन्हें कभी बोलते नहीं देखा गया।

दूसरा—सुनते हैं बिहार से उनका पलायन दक्षिण के इस महायुद्ध से सम्बद्ध है। आज उस युद्ध के समाचार के लिये वे जरा भी लालायित नहीं। जैसे सब ईश्वर प्रेरणा से हुआ जा रहा है।

(कुत्ते के चीखने की आवाज)

पहला—रात भर चीखता रहा है यह कुत्ता। पता नहीं क्या होने

बाला है।

दूसरा—कहीं मृत्यु नाच रही है। कुत्ते का क्रन्दन इसी बात का सूचक है।

पहला—ऐसा ही सुना है किन्तु मृत्यु का महानृत्य तो दक्षिण में अभी हो कर चुका है।

(महाश्रमण का प्रवेश)

पहला—महाश्रमण।

महाश्रमण—कहो भिक्षु।

पहला—कुछ सुना आप ने ?

महाश्रमण—क्या ?

दूसरा—युद्ध समाप्त हो गया।

महाश्रमण—कैसा युद्ध ? इस पुण्य भूमि में युद्ध की बात न छेड़ा करो भिक्षु।

पहला—एक यात्री आया था भिक्षुराज। कह रहा था कांची नरेश वीरगति को प्राप्त हुए, तथा युवराज बन्दी बना लिए गये।

महाश्रमण—नाटक का अन्तिम दृश्य भी समाप्त हो गया (कुछ सोच कर) किन्तु युवराज कौन ?

दूसरा—कांची के युवराज। बस यही उसने कहा था। क्या आप जानते हैं उसे ?

महाश्रमण—(ठंडी आह भर कर) जानता हूं। मैं उस युवराज को खूब जानता हूँ भिक्षु,। (आवेश में) किन्तु तुम यह

सब मुझे क्यों बता रहे हो ? मेरे शान्त मानस में यह कंकरी फेंक कर तुम फिर हिलोरें क्यों उत्पन्न कर रहे हो ? मुझे इस झंझा में धकेलने का तुम्हें क्या अधिकार है ? क्या इस अखिल विश्व के नरेश और युवराज मुझे मेरे मन की शान्ति लौटा सकेंगे ?

पहला—एक साधारण समाचार से महाश्रमण के हृदय को इतनी ठेस लगी—इसके लिये हमें क्षमा कीजिएगा।

महाश्रमण—साधारण समाचार ?

दूसरा—नृपतियों के यही तो खेल हैं। वे मानव के जीवन से मनोविनोद करते हैं।

(भिक्षुओं का प्रस्थान)

महाश्रमण—युवराज। पतझड़ के इन सूखे झोंकों में तुम वसंत बना कर क्यों आ रहे हो ? जिन कोंपलों को मैंने अपने ही हाथ से तोड़ कर फेंक दिया था वे फिर से प्रस्फुटित हो रही हैं। जिस काल निशा से मैंने प्यार किया था तुम उसमें पूनम की चांदनी छिटका कर मेरे उस मधु-स्वप्न को तोड़ना चाहते हो (सोच कर) तुम अब कञ्चन न हो कर युवराज हो। सम्राट् के बन्दी (चारों ओर देख कर) तो क्या यह सब छलना है ? इस पावन प्रदेश में अर्जित मेरा शान्ति प्राग झंझा के एक ही झोंके से बिखर जाएगा ? नहीं ! नहीं ! मैं यहाँ भगवान की शरण में हूँ। अशान्त विश्व से कितनी दूर मैं यहाँ.....

(नेपथ्य में कोलाहल)

यह कोलाहल कैसा ? यहाँ भी आकुलता ? आशा और निराशा का यह संघर्ष उस लीलामय ने मानव की छाती में अनादिकाल से भर दिया।

(नेपथ्य से फिर कोलाहल ' भिक्षुणी का प्रवेश थकान से मूर्छित सी हुई आ रही है।)

महाश्रमण —कौन ? भिक्षुणी ?

भिक्षुणी—(विस्मय भरी प्रसन्नता से) महाश्रमण ! महाश्रमण !

(गिर जाती है)

महाश्रमण—तुम यहाँ इतनी दूर ?

भिक्षुणी—हाँ ! मैं ने आप की खोज में मन्दिर, विहार, राजभवन सब छान मारे। अपनी यह जीवन लीला समाप्त करने से पहले मैं आप को मिलना चाहती थी। मेरी कामना पूर्ण हो गई। महाश्रमण आप...(दिल पर हाथ रख कर) ओह।

महाश्रमण—पाषाण प्रतिमा के काँपने पर आपने विहार छोड़ दिया उसी दिन से महायुद्ध का सूत्रपात हो गया। मैं मगध राज के पास पहुंचा किन्तु नरसंहार न रुक सका। अब आप...(उखड़ते हुए सांसों से) अब आप पाटली पुत्र में जा कर रहें। हिंसा के इस अभिशाप को आप ...ओह ..आप ही रोक... (जोर की खांसी आती है तथा भिक्षुणी के प्राणपखेरू उड़ जाते हैं)

महाश्रमण—(भिक्षुणी को थामते हुए) भिक्षुणी। (शून्य में देखते हुए) तथागत की सच्ची पुजारिन। हिंसा का अभिशाप रोकने के लिये मेरे जिम्मे कितना भीषण काम लगा गई! क्या मैं उसे पूरा कर सकूंगा? जो अपने अभिशप्त हृदय को सान्त्वना न दे सका वह...वह इस दीन हीन विश्व का क्या कल्याण करेगा? (सोच कर) कन्तु अब तो मुझे मगध में जाना ही होगा। उस बीती हुई बात को हृदयपट से सदा के लिये मिटा देना होगा। (गाने लगते हैं)

भूल जा बीती कहानी।
था कभी मधुमास आया।
विश्व में उल्लास छाया।
पुतलियों ने आंसुओं से,
था कभी पी को रिझाया।

आज नयनों में नहीं प्रिय,
रह गया दो बूंद पानी॥
भूल जा बीती कहानी॥

(पट- परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

समय-रात्रि का प्रथम प्रहर

(पाटली पुत्र के राज भवन का एक प्रकोष्ट । कञ्चन अकेली बैठी है । अंधेरा बढ़ता जा रहा है दीपक जल रहा है । चाँद की किरनें खिड़की में से अन्दर आ रही हैं)

कञ्चन—तू अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध भी न ले सकी ! यहां राजमहल में रहते तुम्हें लज्जा न आई ? अरी अभागिन ! तू ने समरांगण में वीरों के समान अपने प्राण होम क्यों न कर दिये ? हृदय में यह धुँआ सा लेकर तू यहाँ कब तक पड़ी रहेगी ? प्रतिशोध । प्रतिशोध । उठ और हाथ में कटार लेकर इस हत्यारे विश्व से अपना प्रतिशोध माँग । (अपनी ओर देख कर) नारी ! (हँस कर) पुरुष के वेश में नारी का हृदय लेकर क्या तू मानव की हत्या कर सकेगी ? अरी पगली, हृदय भी पुरुष का बनाया होता । (कुछ सोचते हुए) पुरुष का हृदय ! क्या पुरुष का हृदय होता है ? नन्हें शिशुओं और अबलाओं का रक्त बहाकर उसे नाचते देखा गया है । क्रूर दानव । नारी ने उसे देव बना दिया । (सोच कर) उस दिन यदि तेरे हाथों से वह अभागा बाण निकल गया होता तो आज तू बन्दिनी बना कर इस कारा में न आती । (इधर उधर

देख कर) कारा ही तो है। प्रतिपग पर हृदय कांपता है कि यदि सम्राट् को पता चल गया कि तू कञ्चन है। वही कञ्चन (मुक्तामाल की ओर देख कर) ओह मैं क्या सोचने लग जाती हूँ !नारी हृदय की बिवशता मुझे प्रतिपग पर घेरे रहती है।

(दरवाजा खटखटाने का शब्द)

कञ्चन—कौन है ?

तुषार—मैं हूँ तुषार।

(कञ्चन दरवाजा खोलती है)

कञ्चन—इस समय प्रहरियों से आँख बचा कर तू यहाँ कैसे आ गई ?

तुषार—एक प्रहरी के रूप में ही तो मैं इस राजभवन में नियुक्त कर दी गई हूँ। और आज स मुझे तुम्हारे इस प्रकोष्ट पर पहरा देना है। यदि भागने का प्रयत्न किया तो (कटार दिखा कर) यह देख लो।

कञ्चन—(मुस्करा कर)यह बात ? तब तो मुझे बहुत सतर्क रहना होगा।

(हवा के झोके से दीपक बुझ जाता है)

तुषार—अंधेरा हो गया। दीपक जलाओ।

कञ्चन—मन की जोत जलाओ तुषार। (हंसती है) मुझे अंधेरा बहुत अच्छा लगता है। जो दीपक हवा के एक साधारण झोंके से बुझ जाए उसे जलने का कोई अधिकर नहीं।

तुषार—तुम्हें तो हर बात में कविता सूझती है ? हटो मैं जलाती हूँ। कोई आ गया तो अनर्थ हो जाएगा।

कञ्चन—अनर्थ क्या हो जाएगा ? यही कहेंगे न कि युवराज आखिल अंधेरी रात में एक स्त्री से वार्तालाप करते देखे गए।

(दीपक जलाती है)

तुषार—(हंस कर) अरे वाह रे युवराज ! (मुद्रा बदल कर) अच्छा मैं एक नया समाचार लाई हूँ।

कञ्चन—क्या ?

तुषार—उस का तुम्हारे जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

कञ्चन—मेरे जीवन के साथ किसी का सम्बन्ध नहीं। मैं जिस आग को जलाना चाहती हूँ वही मेरे जीवन का पथ निर्माण करेगी। जिस दिन वह चिनगारी बुझ गई मैं आत्मघात कर लूंगी। किन्तु तो भी तुम क्या समाचार लाई हो ?

तुषार—सम्राट् ने महाश्रमण वसुबन्धु को सम्मानित किया है।

कञ्चन—महाश्रमण ? वह यहाँ कैसे ?

तुषार—वे एक बौद्ध कवि होने के नाते राजदरबार के रत्न चुने गए हैं।

कञ्चन—तुम ने ठीक कहा था तुषार। इस समाचार का मेरे जीवन से गहरा सम्बन्ध है। किन्तु क्या वे जानते हैं कि मैं यहाँ हूँ।

तुषार—जरूर जानते होंगे।

कञ्चन—(सोचने का नाट्य कर के) जरूर जानते होंगे ? किन्तु तुम यह किस आधार पर कह सकती हो ?

तुषार—इस लिए कि युवराज अखिल का बन्दी बनाया जाना इस युद्ध की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है।

कञ्चन—(सोचते हुए) जरूर जानते होंगे। किन्तु उन्होंने सम्राट् को तो नहीं बताया कि···

तुषार—क्या ?

कञ्चन—कि मैं युवराज अखिल नहीं राजकुमारी कञ्चन हूँ। (ठहर कर) जरूर बता दिया होगा भिक्षुराज का हृदय चंचल है।

तुषार—ऐसा बताने की उन्हें क्या आवश्यकता पड़ी ? (सोचते हुए) कञ्चन, ऐसा वह कभी नहीं बताएंगे। उस दिन मन्दिर में वह तुम्हें किस प्रकार देख रहे थे। तुम्हारे कञ्चन होने के भेद को अपने ही हृदय में रख कर वे अवश्य एक सान्त्वना का अनुभव कर रहे होंगे।

कञ्चन—पुरुष कितना स्वार्थी और मूर्ख है ? (खिड़की के समीप खड़ी होकर आकाश की ओर देखते हुए) तुषार।

तुषार—सखी।

कञ्चन—प्रातःकालके जिन बुझते हुए नक्षत्रों को मैं प्रकाश-स्तम्भ समझी थी वे रवि की पहली ही किरन में अदृश्य हो गए। अरमानों की होली जला कर मैं आशा के जिस दीपक की रक्षा कर रही थी उसे महाश्रमण बवण्डर

के क्रूर झोंके के समान बुझा न दें।

तुषार—किस बात से डरती हो कञ्चन ?

कञ्चन—मैं सम्राट् से पिता की मृत्यु का प्रतिशोध चाहती हूँ। इसी लिये मैं दिन रात पहरेदारों के नियंत्रण में रखी जा रही हूँ।

तुषार—तो क्या सम्राट् को तुम्हारी इस इच्छा का ज्ञान है ?

कञ्चन—सम्राट् ने कहा था वे मेरी इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न करेंगे। जब मैं उन के इन उदार उद्गारों का चिन्तन करती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जाने कोई कह रहा है। कञ्चन, युद्ध में आहत वीरों का प्रतिशोध नहीं लिया जाता। क्या यह मेरा नारीत्व है तुषार ? क्या नारी का ही दूसरा नाम निर्बलता है ?

तुषार—(टिमटिमाते हुए दीपक को देख कर) अच्छा कञ्चन अब सो जा। रात अधिक बीत गई है। मैं बाहर चलती हूँ।

(प्रस्थान)

कञ्चन—नींद न जाने कहाँ चली गई। इतना कुछ चुरा लेने के पश्चात् भाग्य मुझ से नींद भी हर कर ले गया। मुआ स्वयं सो रहा है और मैं जाग रही हूँ। (दीपक की ओर देखकर) तू बुझना चाहता है ? समझता होगा कि कञ्चन जो जल रही है। ठीक है। (एकाएक (दीपक बुझ जाता है। खिड़की में से आते हुए चाँद के प्रकाश को देखकर गाने लगती है।

दीप मैं कैसे जलाऊं ?

जल चुके अरमान मेरे,
अश्रुमय हैं गान मेरे ।
स्वपन थे जितने संजोये,
मिट गए अनजान मेरे ॥

इन बुझी चिनगारियों को मैं भला क्यों कर जलाऊं ?

कल खिले थे फूल सुन्दर,
अर्चना के क्षण मधुरतर ।
आज तो बस आँसुओं के,
हार हैं दो चार प्रियवर ॥

इन विधुर जीवन क्षणों में मैं तुम्हें कैसे रिझाऊं ?

दीप मैं कैसे जलाऊं ?

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

समय-प्रातःकाल

(पाटली पुत्र के राजोद्यान में महाराज समुद्रगुप्त
तथा वसुबंधु वार्तालाप के सूत्र में ।)

समुद्रगुप्त—अजन्ता की गुफाओं में भी तुम्हें शान्ति न मिल सकी भिक्षुराज ! जहाँ कलाकारों ने जड़ को चेतन बना दिया, उस निर्जन पुण्य प्रदेश से भी तुम चले आए।

वसुबन्धु—मैं ने देखा वहाँ प्रभु के प्यारे की कोमल छाया में मानव के संतप्त हृदय को कितनी शान्ति मिलती है। वहाँ जगत् के झूठे प्यार की धड़कनें नहीं। मोहपाश में फंसे हुए नागरिक पर पाषाण हंसते हैं। कला निखर कर वहाँ सत्य, शिव, सुन्दर बन गई है। किन्तु तो भी न जाने क्यों कलाकारों की उन अमर कृतियों के पीछे से उभक कर कोई मुझे प्रतिक्षण कहता था—यथार्थ को छोड़ कर कृत्रिम से प्यार कर रहे हो ? मैं यथार्थवादी बन कर यहाँ आ गया हूँ महाराज।

समुद्रगुप्त—वसु तुम भूल कर रहे हो। कुरुपा नारी दर्पण में अपने नखशिख अपने प्रियतम की आँखों से देखती है। तभी तो वह सुन्दर है। यदि ऐसा न हो तो

संसार के इस मरुस्थल को प्यार की मन्दाकिनी कभी सींच ही न पाए।

वसुबन्धु—यह आत्मप्रवंचना है महाराज।

समुद्रगुप्त—नगर की जिस चमक दमक, नारी के जिस शृङ्गार को तुम यथार्थ समझते हो वह आत्म प्रवंचना ही तो है। यदि तुम ने कलाकार की आँख से उन कृतियों को देखा होता तो तुम्हें उन शिलाओं के अन्दर धड़कता हुआ हृदय दिखाई देता।

वसुबन्धु—मैं कभी कभी बाह्य से इतना सन्तुष्ट हो जाता हूँ कि अन्तर में झाँकने का प्रयत्न ही नहीं करता।

समुद्रगुप्त—अब तुम नगर में आ गये हो भिक्षुराज। यहाँ उस अमर कलाकार पुरुषोत्तम की चलती फिरती प्रतिमाओं को उसी की दिव्य आँखों से देखो। यदि तुम ऐसा न कर सके तो तुम्हें कभी शान्ति न मिल सकेगी।

वसुबन्धु—अशान्ति भी तो हेय नहीं महाराज।

समुद्रगुप्त—यह तुम्हें किसने कहा वसु ?

वसुबन्धु—यह·····यह·····यह मुझे राजकुमारी···(भय से) ओह ? नहीं महाराज यह मुझे मन्दिर में भगवान की प्रतिमा ने कहा था।

समुद्रगुप्त—(मुस्करा कर) प्रतिमा ने ?

वसुबन्धु—आप युवराज अखिल को जानते हैं महाराज ? सुना है वह आज कल सम्राट् का बन्दी है। उसने एक दिन

कुछ ऐसा ही कहा था।

समुद्रगुप्त—क्या तुम उसे जानते हो वसु ?

वसुबन्धु—जानता क्यों नहीं महाराज ? मैं उसे खूब जानता हूँ। विहार में उसे कई बार देखा है।

समुद्रगुप्त—मुझे भी कुछ ऐसा लगता है वसु जाने मैंने उसे कहीं देखा है। परिचित सी आवाज़, लहराती हुए भुजाएं नीली आँखें, सुन्दर ग्रीवा। जब मैं उसे देखता हूँ...

वसुबन्धु—क्षमा कीजिये महाराज। मुझे कहीं जाना है। मुझे... (घबराकर) मुझे कोई भूली बात याद आ गई।

समुद्रगुप्त—नहीं वसु। तुम अभी नहीं जा सकते। तुम कदाचित् समझते होगे कि मैं अपने बन्दी की श्लाघा करने लग गया। नहीं ऐसी बात नहीं। (सोच कर) भिक्षुराज। क्या तुम जानते हो कि अखिल का दिल अब भी प्रतिशोध चाहता है।

वसुबन्धु—प्रतिशोध ?

समुद्रगुप्त—हाँ उसने कहा था वह अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेगा।

वसुबन्धु—(मानसिक प्रसन्नता को दबा कर) आप से प्रतिशोध ? (हँसी)

समुद्रगुप्त—तुम उस से मिलो वसु।

वसुबन्धु—(उत्सुकता तथा विस्मय से) मैं ? मैं युवराज अखिल से मिलूं ? (घबरा कर) नहीं महाराज। ऐसी आज्ञा मुझे मत दीजिए।

समुद्रगुप्त—(मुस्कराते हुए) अच्छा भिक्षुराज तुम अब जाओ। तुम्हारे चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं प्रकट हो रही हैं।

(वसुबन्धु का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—(सोचते हुए) अशान्ति भी तो हेय नहीं ! अखिल, प्रतिशोध की इस ज्वाला से तुम्हें मुक्त करने के लिये मैं सब कुछ करूंगा। (ठहर कर) भिक्षुराज के दिल में एक तूफान सा चलता रहता है। उसका मन तथागत के शान्ति के उपदेश की अवहेलना करता हुआ न जाने क्या चाहता है ? युवराज का नाम लेने से उसकी मुद्रा बदल जाती है। (सोच कर) मुझे युवराज से शीघ्र मिलना चाहिये।

(समुद्रगुप्त का प्रस्थान। मालिन का प्रवेश। मालिन हाथ में डलिया लिये हुए फूल तोड़ रही है तथा गाती जा रही है। पीछे से आकर वसुबन्धु एक ओर खड़े हो जाते हैं तथा गाना सुनते हैं)

मालिन— (गीत)

चम्पाकली चम्पाकली।

तू नित्य मुस्काती है क्यों ?
मधुमास में गाती है क्यों ?
रूठे हुए अलि के, युगों से,
प्यार में जाती है क्यों ?
जब मधुनिशा में वियोगिनी, आये न तेरे पास पी।
चम्पाकली चम्पाकली ॥

वसुबन्धु--फूलों से बातें करने वाली रमणी तू कौन है ?

मालिन--(बिना मुड़ कर देखे) मैं इस उद्यान की मालिन हूँ महाराज। आप कौन हैं ? (देख कर) ओह महाश्रमण वसुबन्धु ? राजदरबार के रत्न ? (पुनः फूल तोड़ने लगती है)

वसुबन्धु—(मुस्करा कर) किस मधुवल्लरी को उपदेश दे रही थी

मालिन--यह देखो महाराज। कितने श्वेत फूल हैं इस के ! किन्तु कहते हैं इस पर भँवरा कभी नहीं आता। मैं कहती हूँ यह पगली है। प्रियतम रूठा हुआ है। तो भी दिन रात मुस्कराए जा रही है। राव जाने अपना परिमल क्यों लुटाती है यह ?

वसुबन्धु—परिमल तो लुटाने की ही चीज़ है मालिन। दो दिन का यह लघु जीवन हँसते खेलते ही बीत जाना चाहिये। कड़ी दोपहरी में भी कोमल वृन्तों में छिप कर पक्षी गाते हैं। उस मधुगान का श्रोता कौन है यह सोचने का अवकाश उन्हें कहाँ ? नील गगन में लाल रेशमी दुकूल पहने ऊषा प्रतिदिन आती है। उसे चाहने वाला कौन है—यह उसने कब सोचा ?

मालिन—ठीक होगा महाराज ! आप कवि हैं। (फूल तोड़ते हुए) देर हो रही है। युवराज प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

वसुबन्धु—युवराज कौन ?

मालिन—युवराज अखिल। आप नहीं जानते उन्हें !

वसुबन्धु—तो ये फूल उन के लिये जा रहे हैं क्या ?

मालिन—जी हाँ। उन्हीं के लिये।

वसुबन्धु—(एक ताज फूल तोड़ कर डलिया में डालते हुए) मालिन यह एक फूल मेरा भी ले जाओ। युवराज से कहना.... (सोच कर) अच्छा, उनसे कुछ मत कहना। मेरी ओर से केवल यह फूल दे देना।

मालिन—किन्तु ऐसे फूल तो युवराज पसंद नहीं करते।

वसुबन्धु—तुम ले जाओ मालिन। वसु के फूल तो भगवान तथागत ने भी अस्वीकार नहीं किये।

(मालिन का प्रस्थान)

वसुबन्धु—झंझा के साथ चलने वाले असहाय रजकण के समान मैं यहाँ एक अदृश्य डोरी से घुमाया सा जा रहा हूँ। भिक्षुणी ने जिस रक्त की क्रीड़ा को रोकने के लिये प्राण दिये हैं उसी खेल का सूत्रधार बनकर किस ओर चला गया ? (ठहर कर) सम्राट् का युवराज से कितना प्यार है! और जिस दिन उन्हें यह पता चल गया कि विश्व की एक अद्वितीय सुन्दरी कितना भयङ्कर नाटक रच रही है...(सोच कर) किन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान कभी न होने देना चाहिये। युवराज प्रतिशोध चाहता है (प्रसन्नता से) इस प्रतिशोध में यदि मैं उसकी कुछ सहायता कर सकूँ। (घबरा कर) किन्तु

सम्राट् का जीवन ? (ठहर कर) कंचन को पाने के लिये क्या मुझे दानव बनना पड़ेगा ? अच्छा मैं युवराज से मिलूंगा ।

(प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

समय-प्रातःकाल

(युवराज अखिल अपने प्रकोष्ठ में तुषार के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। बाहर आँधी चल रही)

तुषार—लाल फूल ?

अखिल—हाँ लाल फूल। और केवल इतना कहा कि यह वसुबन्धु ने दिया है ?

तुषार—कदाचित् तुम्हें सावधान किया गया है कि महाश्रमण यहीं पाटलीपुत्र में आ चुके हैं।

अखिल—किन्तु मेरे लिये इस परिचय की क्या आवश्यकता थी ? यह फूल भेज कर उसने मेरे आत्मसम्मान को ठेस लगाई है। मुझे उस लालफूल की हर पत्ती पर एक कालबिन्दु दिखाई देता था। जाने वह महाश्रमण के हृदय की कालिमा का प्रतिबिम्ब हो। तथागत के धर्म को कलंकित करने वाले उस पापपुंज को एक बार तो.....

तुषार—ऐसा मत कहो कञ्चन। ऐसा मत कहो। यह क्रोध में आने का समय नहीं।

अखिल—मुझे इस में किसी कुचक्र की भूमिका दिखाई दे रही है।

तुषार—(हंसी में)यह पुष्प प्रेम का उपहार भी हो सकता है।

अखिल—उपहास मत करो तुषार। मेरा खून खौल रहा है! महाश्रमण को मुझे ऐसा उपहार भेजने का कोई अधिकार नहीं।

तुषार—किन्तु तुम्हें यह उपहार शायद स्वीकार ही करना पड़े।

अखिल—(क्रोध में) तुषार।

तुषार—तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे नारी होने के रहस्य को केवल वसुबन्धु जानते हैं। यदि सम्राट को पता चल गया तो क्या होगा। पुरुष के वेश में अब तक जो नाटक तुम खेल रही हो उस में बड़ी सावधानी से चलने की जरूरत है।

अखिल—तुषार, तुम जाओ, मुझे दो घड़ी अकेली छोड़ दो।

(तुषार का प्रस्थान)

अखिल—(तुषार के शब्द दोहराते हुए) मुझे शायद यह स्वीकार ही करना पड़ेगा। तुषार, यह तुम क्या कह गई हो? तो क्या इस रहस्यमय खेलके लिये मुझे अभी और झुकना होगा? क्या कञ्चन के रूप में मैं सम्राट् के पिता की मृत्यु का बदला न ले सकती थी? किंतु कञ्चन का तो वे जानते हैं। तो फिर क्या करना होगा? किस उलझन में डाल दी गई हूँ? (ठहर कर) महाश्रमण तुम आग से खेलना चाहते हो।

(वसुबन्धु का प्रवेश)

वसुबन्धु—राजकुमारी?

अखिल—(चौंक कर) कौन महाश्रमण ? आप इस आँधी में यहाँ कैसे ?

वसुबन्धु—(मुस्करा कर) संसार से विरक्त होकर भी जिस मानसिक अनुतापसे मैं मुक्त न हो सका उसे क्षण भर भूल जाने के लिये यहाँ आया हूँ। राजधानी का जीवन कितना सुन्दर, कितना अनुरागपूर्ण है।

अखिल—राजदरबार में आप के आने की सूचना मुझे मिल गई थी। मालिन के हाथ आपने एक फूल भेजा था। किन्तु महाश्रमण, जिस व्यक्ति को तथागत के चरणों में भी शान्ति न मिली, उसे संसार में कहीं शरण नहीं मिल सकती।

वसुबन्धु—राजकुमारी, उस दिन तुम्हीं ने तो कहा था कि अशान्ति भी क्या हेय है ?

अखिल—मैं ने ठीक ही कहा था किन्तु मैं देखती हूँ कि अशान्त होकर आप शान्ति की खोज में चल पड़ते हैं और जब आप के मन में शान्ति की चन्द्रिका छिटकती है, तो आप अशान्ति की निशा में भटकना चाहते हैं।

वसुबन्धु—जितना अधिक मैं इस अशान्ति का कारण ढूंढता हूँ मैं अपने आप को तुम्हारे समीप पाता हूँ।

अखिल—(हंस कर) मेरे समीप ? मेरे समीप आग और धुआँ है। महाश्रमण। आप तो पहले ही जल रहे हैं। आप के हृदय की चिंगारी बुझाने के लिये महासागर के पानी की जरूरत है।

वसुबन्धु-(खिलखिलाकर राज कुमारी की मुद्रा का अध्ययन करते हुए) मैं कारणवश तुम्हारे पास आया था कञ्चन। सब से पहले मुझे काञ्चीनरेश के निधन पर समवेदना प्रकट करनी है, और फिर तुम यहाँ सम्राट् की बन्दिनी हो इस का मुझे दुःख है। सम्राट् यह नहीं जानते कि तुम एक नारी हो। उस दिन वह मुझ से कितना ही कुछ पूछ रहे थे।

अखिल—(घबरा कर) तो आपने उन्हें बतलाया तो नहीं ?

वसुबन्धु—(खिलखिला कर) मैं यह कैसे बता सकता था ? मैं तुम्हारी साधना में विघ्न कैसे डाल सकता हूँ ?

अखिल—साधना कैसी ?

वसुबन्धु—मुझे पता चलता था कि तुम सम्राट् से प्रतिशोध चाहती हो।

अखिल—आप को किसने कहा ?

वसुबन्धु—स्वयम् सम्राट् ने। अखिल की ओर ध्यानपूर्वक देखते हैं)

अखिल—सम्राट् ने ?

वसुबन्धु—हाँ, और मैं ने सोचा मैं राजकुमारी के इस मनोरथ को पूर्ण करने में यदि कुछ सहायता कर सकूं तो अपने आप को धन्य मानूंगा।

अखिल—आप ? नहीं महाश्रमण। सम्राट् का जीवन····(सोच कर) वे वीर हैं। वे जनता के हृदय के भी सम्राट् हैं।

वसुबन्धु—(खिलखिला कर) तो क्या मैं यह समझ लूं कि मगध की इस मधुरिमा में तुम महाराज विष्णुगोप भूल गई हो ? मुझे तो अब भी ऐसा लगता है जाने काञ्चीनरेश की आत्मा दिन रात इस राजप्रसाद के ऊपर इसी प्रतिशोध के लिये मंडलाया करती है।

अखिल—(दुःख और क्रोध से हाथ मलते हुए) महाश्रमण। यह आप क्या कह रहे हैं ? दिन रात यहाँ इस कारागार में मैं प्रतिशोध की आग में जला करती हूँ ! किन्तु ऐसा लगता है जाने कालनिशा के भयङ्कर क्षणों में कोई मेरे कानों में आकर कह जाता है—प्रतिशोध तो भगवान के हाथ में है।

वसुबन्धु—भगवान ? (हंस कर) भगवान कौन ? यहाँ पत्थर की प्रतिमाएँ न ? मानव को मूर्ख बनाने के लिए ही कलाकार ने पाषाण के इस भगवान की रचना की है। जब मानव की केवल इसी कारण हत्या हो रही थी कि वह काञ्ची या मगध का सैनिक है जब निरापराध जीवों पर आग और लोहे की बरसात हो रही थी तो कहां थे भगवान ? यह युद्ध भी तो एक प्रतिशोध ही था। भगवान के हाथ में कुछ नहीं राजकुमारी। भगवान स्वयं कुछ नहीं। विश्व में जो कुछ सुन्दर है वह मानव ने बनाया है। मानव ही उसे मिटा देगा। सच जानो कञ्चन यह भगवान भी उसी मानव की रचना है।

अखिल—तो क्या

वसुबन्धु—(खिलखिला कर) सम्राट् वीर हैं। सुन्दर है। तुम उन्हें पूज्य समझती हो। नारी हृदय की यह दुर्बलता तुम्हारे कर्तव्यपथ में बाधा बन रही है। तो फिर तुम नारी ही क्यों नहीं बन जाती ? मैं सम्राट् से आज ही

अखिल—नहीं नहीं महाश्रमण ! यह अब कैसे हो सकता है ? (एक तरफ मुड़ कर) यह अब कैसे हो सकता है ? (बैठ जाते हैं)

वसुबन्धु—तुम्हारे अन्तर में चलने वाले इस द्वंद्व से मैं समझ सकता हूँ कि तुम प्रतिशोध के लिये पागल हो रही हो किन्तु असहाय हो। काञ्ची की पुण्य भूमि में कुछ देर रह लेने के पश्चात् इस प्रतिशोध में तुम्हारा हाथ बटाने का मेरा कर्तव्य सा हो गया है। (दरवाज़ा खटखटाने का शब्द) अच्छा कञ्चन अब मैं चलता हूं।

(प्रस्थान)

अखिल—(दरवाज़े की ओर देखते हुए) आंधी चल रही है। इस हृदय में भी एक तूफान सा उठ रहा है। महाश्रमण पतन की ओर जा रहे हैं। उनकी आंखों में ईर्ष्या की आग जल रही थी। क्या वे मेरे मर्म पर चोट लगाने आये थे ! वे इस प्रतिशोध में मेरी सहायता क्यों करेंगे ? पुरुष कितना स्वार्थी है। (ठहर कर) सम्राट

उदार हैं। महाश्रमण का हृदय कितना संकुचित है! (खड़े होकर) कुछ समझ में नहीं आता (ऊपर देखकर) प्रभो! तुम मेरी इस जीवन लीला पर मृत्यु का आवरण क्यों नहीं डाल देते?

(पट परिवर्त्तन)

दूसरा दृश्य

समय-सध्याह्न

(पाटली पुत्र के समीप एक सरोवर के किनार पीपल की छाँह में दो नागरिक वार्तालाप कर रहे हैं। पास ही पत्थर काट कर बनाया गया एक शिव-मन्दिर है।)

पहला—पीपल की सघन छाया कितनी शीतल है!

दूसरा—और यह लहराता हुआ सरोवर!

पहला—श्रान्त पथिकों के लिये यह स्थान स्वर्ग से भी बढ़ कर है।

दूसरा—यहीं क्या सभी पथ वृक्षों की सघन छाया से चलने वालों की श्रान्ति हर रहे हैं, समुद्रगुप्त के साम्राज्य में जनता के लिये कितना कुछ हो रहा है! गाँव गाँव में आतुरालय खुल गए हैं। कला और साहित्य की उन्नति हो रही है। समाज में नारी का कितना सम्मान है! भारत अखण्ड है। अजेय है।

पहला—इस युद्ध के पश्चात् सम्राट् ने प्रजा को दर्शन नहीं दिए।

दूसरा—इस विजय के अनन्तर महाराज कुछ खिन्न तथा क्षुब्ध से रहने लगे हैं।

पहला—युवराज अखिल आज कल कहाँ हैं?

दूसरा—बन्दीगृह में। उसे सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं किन्तु प्रहरियों

की तलवारें उस के सिर पर नाचती रहती हैं। महाराज उसे काञ्ची की राजगद्दी पर बिठाना चाहते हैं। वह वीर है। सुन्दर है। चन्दू कह रहा था वह दक्षिण में लौट कर नहीं जाना चाहता।

पहला—चन्दू कौन ?

दूसरा—चन्दू माली। उसकी स्त्री राजोद्यान की मालिन है न ? वह युवराज के लिये फूल ले कर जाया करती है। कहता था कि बौद्ध-कवि वसुबन्धु राजकुमार से मिल कर किसी षडयंत्र की रचना कर रहा है।

पहला—महाराज को सावधान रहना चाहिये। पंडित हेमचन्द्र कह रहे थे कि कई दिनों से आकाश में धूमकेतु दिखाई दे रहा है।

दूसरा—सम्राट् के विषय में चिंता करना हमारी दुर्बलता है। विपत्तियों से जूझने में ही तो उन्हें मज़ा आता है।

पहला—(शिव मंदिर की ओर देखकर) वह देखो शिवमन्दिर से निकल कर महाश्रमण एक भिक्षु के साथ इधर ही आ रहे हैं।

दूसरा—(उसी ओर देखते हुए) शिवमंदिर में महाश्रमण का क्या काम ? अवश्य ही इस में कोई रहस्य है। अब हमें चलना चाहिये। ऐसी सौम्य काया में कितना कुरूप हृदय छिपा रक्खा है महाश्रमण ने !

(दोनों का प्रस्थान। महाश्रमण का एक भिक्षु के साथ प्रवेश)

भिक्षु—शंकर की उस मूर्ति को देखकर मुझे कितना भय लगा !

महाश्रमण—ईश्वर का यह कल्याणकारी रूप हिन्दुओं के वैज्ञानिक मस्तिष्क की एक अनुपमदेन है। तथागत ने तो केवल शान्ति का उपदेश ही दिया। शंकर ने शांति स्थापित की। एक ने अपनी शिक्षा को फलीभूत करने के लिये आश्रय ढूँढा। दूसरा स्वयम् आश्रय है। एक सत्य का अनुसंधान करने वाला महायात्री है और दूसरा सत्य है। डरो मत भिक्षु।

भिक्षु—किन्तु हिंसा के इस पथ पर चलने से मन में कलुष भर जायगा।

महाश्रमण—हिंसा कैसी भिक्षु? आत्मा को कर्मबंध तो तभी होता है जब कर्म में उसकी रागात्मिका बुद्धि रहे। हमें कर्तव्यपालन करना होगा। काँचीनरेश बौद्ध होते हुए भी अपने प्राणों को हथेली पर रख कर शत्रु से लड़ते रहे। अहिंसा का अर्थ हमने गलत समझ रखा है।

भिक्षु—किन्तु परिव्राजक के लिये यह पथ वर्जित है, महाभिक्षु।

महाश्रमण—मानव भगवान् का अंश है, उस के लिये कुछ भी वर्जित नहीं।

भिक्षु—उस पैनी कटार को देख कर मेरे हृदय में जाने क्या होने लगता है! आखिर ऐसा क्रूर कृत्य किसलिये किया जा रहा है?

महाश्रमण—मनकी शान्ति। प्रतिशोध।

भिक्षु—प्रतिशोध? किससे प्रतिशोध लेना चाहते हैं आप?

महाश्रमण—तुम्हें यह जानने की आवश्यकता नहीं। समझ लो वह सामने एक पथिक जा रहा है। तुम्हें अपनी कटार लेकर इसी के वक्ष में भोंक देना है। क्या तुम्हारी मानसिक दुर्बलता तुम्हें कर्तव्यपथ पर बढ़ने देगी ?

भिक्षु—(काँपते हुए) नहीं श्रमण। इस कुपथ की कल्पना मात्र से मेरा हृदय काँप उठा है। क्षमा कीजिए। यह मेरे बस का नहीं। ऐसा मैं कभी न कर सकूंगा। निर्दोष प्राणी की हत्या ! भगवान् ने तो यहाँ तक कहा है कि अपराधी को भी क्षमा कर दो। महाश्रमण, आप भगवान् से इतने विमुख क्यों हो गए ? सन्यासी होते हुए आप ने यह कैसा कंटीला रास्ता चुन लिया है।

महाश्रमण—(शून्य में देखते हुए) भिक्षु तुम जाओ। यह कलीयता इस जन्म में तो तुम्हारा पीछा न छोड़ेगी। (प्रसन्नता में भिक्षु का प्रस्थान) साहस से काम लेना होगा। जीवन का मोह ही मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इसी लिये वह मृत्यु से डरता है। युद्ध में कितने ही प्राणी मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। किन्तु वह सब क्षम्य हैं। वैसे किसी को मार डालना कितना दुष्कर है। उसके लिये प्राणदण्ड का विधान है। (सोचकर) इस कंटीले मार्ग को पार करके ही तो सुरम्य बनस्थली में पहुँचना होगा। निर्णीत पथ पर पाँव बढ़ाकर पीछे हटना कायरता है। (किसी को

आते देख कर वृक्षों की ओट में छिपते हुए) नगर-वधुएँ पानी भरने के लिये आ रही हैं। यहाँ छिप कर देखूं, नारी के मस्तिष्क पर आज कल कौनसा विचार छाया हुआ है।

(सुनीता तथा श्यामा का मटके लिए हुए प्रवेश)

श्यामा—(मटका भरते हुए) कितनी दारुण व्यथा है। फिर भी जीना पड़ रहा है।

सुनीता—जीवन तो किसी न किसी तरह बिताना ही है बहिन। ऐसा सोचोगी तो कब तक जियोगी ?

श्यामा—नारी का जीवन ही दुःखमय है। जिस पुरुष के गिर्द वह अपने सुख और दुःख के धागे बुनती है, उस का अपना जीवन भी किसी दूसरे के हाथ में है। जब तक स्वामी रण क्षेत्र में लड़ते रहे, मैं आशा का दीपक जला कर इस तिमिर में भी प्रकाश की मुस्कान देखती रही। सोचती थी वे विजयी होकर आएँगे। मेरी वेदना के पल उस एक मधुर क्षण में समा जाएँगे। किन्तु वह घड़ी न आई। न ही आई सुनीता।

सुनीता—जीने को कर्तव्य समझ कर जी लो बहिन। दुःख के इन बीते हुए दिनों की याद मत आने दो।

श्यामा—(मटका उठाते हुए) नारी कितनी असहाय है बहिन। सम्राट् की सनक पूरी हो गई। मेरा सिंदूर पुंछ गया।

जी में आता है सम्राट को···

सुनीता—छि: ! छि: ! क्या कह रही हो श्यामा ? कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा ?

(दोनों का प्रस्थान)

महाश्रमण—(वृक्ष की ओट से बाहर निकल कर) मगध की नारी के हृदय में भी प्रतिशोध है। मेरे मन की ज्वाला निस्सीम होकर कितने आहत प्राणों में समा गई है। (सोच कर) उस सुन्दर पुष्प को पाने के लिये इस काँटे को हटाना ही होगा।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

समय—प्रातःकाल

(राजप्रासाद में कञ्चन का प्रकोष्ठ । खिड़की के सहारे खड़ी कञ्चन कुछ सोच रही है ।)

कञ्चन— जिस चिनगारी को दबाने के लिये मैं ने अरमानों की राख बनाई थी, तुम उसे एक ही क्षण में प्रज्वलित कर गये । महाश्रमण, पिता की याद दिला कर तुम मेरे मर्म पर वह खुरच लगा गये हो जो शायद कभी न पुर सके । मुझे प्रतिशोध चाहिये, तुम्हें इससे क्या ? तुम्हें जिसने आश्रय दिया, उसी के विरुद्ध तुम यह कुचक्र रच रहे हो । सन्यासी होकर तुम साँप के समान वक्र रेखा पर चलने का अभ्यास क्यों करने लग गये ? प्रकाश-वृत्त में भी आँखें मूँद कर तुम अन्धकार की रचना क्यों कर रहे हो ? जीवन के अथाह सागर से अमृत को छोड़ कर तुम केवल गरल ही क्यों भर लाते हो ? (ठहर कर) उस दिन तुम्हारी आँखों से पाप झांक रहा था । तुम तथागत के पुनीत उपदेश को बिलकुल भूल गए ! क्षमा के अवतार भगवान बुद्ध की अमर वाणी से तुम ने कुछ भी न सीखा ! (सोचकर) क्षमा ! भगवान ने कहा था

अपराधी को क्षमा कर देना ही सब से बड़ा प्रतिशोध है। तो क्या.....(झुंझला कर) ओह ! मैं किसी निर्णय पर क्यों नहीं पहुँच पाती ?

(तुषार का प्रवेश)

तुषार—दिन रात इस खिड़की के सहारे खड़ी हो कर तुम कुछ सोचा करती हो। तुम्हें हो क्या गया है कञ्चन ?

कञ्चन- हृदय में एक द्वंद्व सा चलता रहता है। जिस दिन से महाश्रमण...

तुषार—(कञ्चन की बात को काटते हुए) भाड़ में जाय मुआ महाश्रमण। अब के आयेगा तो सिर फाड़ दूंगी। नीच कहीं का ? नगर वधुओं को आँखें फाड़ फाड़ कर देखता है। तथागत के किये कराये पर पानी फेर कर दम लेगा।

कञ्चन—ऐसा मत कहो तुषार। वह राजदरबार का रत्न है।

तुषार—(हंस कर) क्या कहा ? रत्न है ? वह तो कंकर है। निरा कङ्कर। वायु का झकोरा जिस ओर जी चाहे उसे उठा ले जाए। अभी उस दिन मालिन से क्या खुल कर बातें कर रहा था ! भगवान ने मनुष्य के मस्तिष्क में उल्लू की खोपड़ी डाल दी है। इस से बात करते समय कोई स्त्री ज़रा मुस्करा दे तो कितने उल्टे सीधे अर्थ निकलता है। (दोनों हंसती हैं) देखो कञ्चन। मैं यहाँ का प्रहरी हूँ। मेरी आज्ञा है कि इस खिड़की

के सहारे तुम कभी मत खड़ी हुआ करो। (बांह पकड़ कर एक ओर ले जाती है) आखिर तुम दिन रात क्या सोचती रहती हो ?

कञ्चन—कभी हवा इस ज़ोर से चलती है कि प्रतिशोध की प्रचंड लपटें उठ कर विश्व को घेर लेती हैं। दूसरे ही क्षण मस्तिष्क पर बादल से छा जाते हैं। मन में केवल धुआं सा रह जाता है।

तुषार—प्रतिशोध लेने के लिये ही तो इतने दिन यह नाटक रचा है। तुम्हें किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहिये था।

(प्रस्थान)

कञ्चन—तुषार, तुम कटु सत्य कह गई तो। इसीलिये तो पुरुष के वेश में इतने दिन बन्दिनी रही हूँ। इसीलिये तो महाश्रमण की आँखों में से झाँकती हुई कलुषित लालसा को कायरों के समान सह लिया। इतने कड़वे घूँट पी लेने के पश्चात् भी आज मैं वहीं खड़ी हूँ। (गले में पड़ी हुई माला को बाहर निकाल कर) मुक्ता माल ! (आह भरती है) किन्तु मैंने अपना पथ निश्चित कर लिया है। संसार की कोई चीज़ मुझे नहीं रोक सकती ! (माला को तोड़कर नीचे गिरा देती है) किसी के प्यार ने जड़े हुए ये मोती काल के चिरप्रवाह में बहा देने होंगे ! आँसू नहीं, आँखों में आग लेकर चलना होगा। (धीरे धीरे चल कर खिड़की के पास आ जाती है) अश्रुओं की ओस से जिस फूल को अब तक

पूजा की थी, उसे तुषार के समान ठंडा अंगुलियों से मसल देना होगा।

(सम्राट समुद्रगुप्त का प्रवेश)

समुद्रगुप्त—अखिल।

कञ्चन—(पीछे मुड़ कर तथा विस्मित हो कर) कौन ? सम्राट् ? क्षमा कीजिये।

समुद्रगुप्त—क्षमा तो तुम करोगे युवराज। आज इतने दिनों के पश्चात् मैं केवल इस उत्सुकता से आ गया हूँ कि देखूं वह आंधी के उग्र झकोरे अब भी तुम्हारे हृदय में चलते हैं या नहीं। किन्तु मैं देख रहा हूँ (इधर उधर देखते समय दृष्टि माला पर जा कर अटक जाती है। उसे उठाते हुए) ओह यह माला ? (देख कर) युवराज यह माला तुमने...(युवराज की ओर ध्यानपूर्वक देखते) हैं)

अखिल—(घबराकर काँपते हुए) माला ? (अपने वक्ष की ओर देख कर) यहाँ कैसे गिर गई ? (कुछ सोच कर) मैं तो क्षणभर भी इससे अलग नहीं रह सकता महाराज। जब मैं अपने जीवन का पांसा इस युद्ध में फेंक चुका था तो हमारे अन्तिम मिलन का यह चिह्न उसने मुझे दिया था ! किसी सुन्दरी के प्रेम का उपहार। बस यही कुछ बचा है मेरे पास।

समुद्रगुप्त—(शून्य दृष्टि ले) प्रेम का उपहार। (अखिल की ओर देख कर) उस युवती का नाम क्या था अखिल ?

अखिल—नाम ? (सम्राट् को मुद्रा का अध्ययन करते हुए) आप इस माला को देखकर इतने उद्विग्न क्यों हो उठे हैं महाराज ? (हाथ बढ़ा कर) लाइये मैं इसे जोड़ लूं महाराज। यह रही सही पूंजी भी अब लुटती सी जा रही है।

समुद्रगुप्त—(माला देते हुए) तुम्हारे इस प्रेम के उपहार को रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं अखिल !

(प्रस्थान)

अखिल—(माला को जोड़ कर गले में डालते हुए) कैसा चित्र बनता जा रहा है ! अदृश्य तूलिका कैसे रंग भरती चली जा रही है ! (सोचकर) वह सामने आते हैं तो जैसे दिल की धड़कनें क्षण भर के लिए स्तब्ध होकर रह जाती हैं। (सम्राट् के शब्द दोहरा कर) क्षमा तो तुम करोगे ! (आह भरते हैं)

(तुषार का प्रवेश)

तुषार—फिर खिड़की के सामने खड़ी हो ? मैं कहती हूँ तुम्हारे होश कहाँ उड़ गए।

कञ्चन—सम्राट् आये थे।

तुषार—(विस्मय से) सम्राट् !

कञ्चन—हाँ पृथ्वी पर पड़ी हुई मुक्तामाल पर उन की दृष्टि जा पड़ी। मैं ने कह दिया यह किसी युवती ने मुझे उपहार रूप में दी थी। वे निराश होकर चले गये।

तुषार—तुमने कितनी समझदारी से काम लिया कञ्चन ! किन्तु

सम्राट् के लिए तो एक नई समस्या खड़ी हो गई होगी।

कञ्चन—तुषार, मैं यह सोचती हूँ कि वे समस्त भारत के सम्राट् होते हुए भी मुझ से क्षमा क्यों मांगते हैं? आज उनकी सामर्थ्य से बाहर क्या है? वे चाहें तो मेरे इस जीवन नाटक को क्षणभर में समाप्त कर दें। वे ऐसा क्यों नहीं चाहते? संसार को क्षमा की भिक्षा देने वाले, वह मेरे द्वार पर पात्र ले कर क्यों आते हैं? वे मुझे प्राणदण्ड क्यों नहीं देते?

तुषार—वे वीरों का सम्मान करते हैं कञ्चन।

कञ्चन—माला की इस घटना से वे क्षुब्ध हो उठे हैं। उनकी निराश मुद्रा से कोई भी समझ सकता है कि वे कञ्चन से प्यार करते हैं। (सोचकर) वे कितने उदार, कितने संयमी हैं। (तुषार की ओर देख कर) मैं ही पतन की ओर क्यों जा रही हूँ? मुझे बचाओ तुषार। (फिर बाहर देखने लग जाती है)

तुषार—कञ्चन तुम पागल हो जाओगी।

(प्रस्थान)

कञ्चन—पागल तो मैं हो जाना चाहती हूँ तुषार। अच्छा देखो, मैं अब इस खिड़की के समीप कभी न आऊँगी। (इधर उधर देख कर) तुम चली गई तुषार? (माला पहनते हुए) प्रेम के इस अमूल्य उपहार को अब मैं

अपने हृदय से लगाकर रखूंगी। (सोचने का नाट्य करते हुए) हृदयाकाश में वे सरस मेघ से बरस गए। हिमगिरि के समान उनकी शुभ्र उदारता के सम्मुख मैं कितनी लघु हूँ। (ठहर कर) उन्होंने ठीक ही कहा था प्रतिशोध तो भगवान के हाथ में है (सोचते हुए) किन्तु महाश्रमण ? (झुंझला कर) तुषार ठीक कहती थी मैं पागल हो जाऊँगी।

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

समय-प्रातःकाल

(राजोद्यान में शिलापीठ पर बैठे हुए सम्राट् समुद्रगुप्त वीणा बजा रहे हैं)

समुद्रगुप्त—(गीत)

दिल भरा भरा क्यों रहता है ?
जब काले बादल आते हैं।
शीतल जल कण बरसाते हैं।
जब ताप तप्त इस जगती के
सब प्राणी जीवन पाते हैं।

उन सुन्दर सजल बहारों में,
क्यों चातक प्यासा रहता है।
दिल भरा भरा क्या रहता है॥

पूनम का चन्दा आता है;
जब मस्त गगन मुस्काता है।
जब वसुधा का सुन्दर कण कण,
आशा का गीत सुनाता है।

सुन्दर चकोर तब शशी को तज,
अंगारे खाता रहता है॥
दिल भरा भरा क्यों रहता है?

(बीणा को एक ओर रखकर खड़े हो जाते हैं। पास ही एक वृक्ष के सहारे खड़े होकर शून्य दृष्टि से सामने देखने लगते हैं। हाथ मे एक कोंपल तोड़ कर दाँतों में दबा ली है। ऐसा लगता है जाने अचानक एक गहरे सोच में लीन हो गए हों।)

समुद्रगुप्त—यह जीवन भी एक पहेली है। आशा का केन्द्र बना कर जिस डाली पर तुम अपना नीड़ बनाते हो, दूसरे ही क्षण आँधी का एक निर्मम झोंका उसे धूल में मिला देता है। चन्द्रकिरन पकड़ने के प्रयास में केवल अंधकार को ही छू पाते हो। प्यार की जिस अनूठी छवि को दिल की धड़कनों में छिपा कर रखना चाहते हो, वह पुतलियों पर मोती और अधरों पर मुस्कान बन कर निकल ही तो पड़ती है। (सोचकर) मुक्तामाल! किसी के प्रेम का उपहार। कञ्चन उसे भी अपने पास न रख सकी! नारी! (हंसकर) नारी भी विधि की एक अपूर्व रचना है। (कुछ और सोचकर) आंचल सुन्दर है। तो क्या नारी केवल इसी लालित्य की भूखी है? क्या उसका हृदय इतना रीत गया है? (फिर शिलापीठ पर बैठ जाते हैं) किस उलझन में पड़ गया हूँ!

(वसुबन्धु का प्रवेश तथा अभिवादन

समुद्रगुप्त—कैसे आना हुआ वसु?

वसुबन्धु—सम्राट् की खोज में इधर आ निकला हूँ।

समुद्रगुप्त—आओ, बैठो कविवर। अखिल को मिले थे क्या ?

वसुबन्धु—(बैठते हुए) मिला था महाराज।

समुद्रगुप्त—तुम एक बौद्ध सन्यासी हो वसु। युवराज के हृदय में होने वाली भीषण प्रतिक्रिया को तुम ने नहीं रोका ? झंझा के समान उठती हुई उस रेणुका पर तुम ने कादम्बरी के समान भगवान की अमृतवाणी की वर्षा नहीं की ?

वसुबन्धु—लपटें अभी उठ रही हैं महाराज। युवराज उन में स्वयम् जल रहा है। मन के दर्पण पर धुआं सा जम गया है। किसी भी प्रकार में उसका परिष्कार न कर सका !

समुद्रगुप्त—(शून्य दृष्टि से) वह उस तैराक के समान है जो तट पर पहुँच कर फिर आवर्त में छलांग लगा देता है। उत्सुकता से नहीं। केवल इसलिये कि नियति के प्रवाह से टकराना है ! (वसु की ओर देख कर) तुम ने उसकी आँखों में कुछ देखा वसु ?

वसुबन्धु—(घबराकर) नहीं महाराज।

समुद्रगुप्त—तुम ने उसकी आँखों में छलकता हुआ किसी का प्यार नहीं देखा ?

वसुबन्धु—(विस्मय का नाट्य) प्यार ! दिल की इन कोमल थिरकनों की प्रतिक्रिया तो मैं ने उसकी आँखों में नहीं देखी।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन के पश्चात्) मंत्री हरिसेन आना चाहते हैं

महाराज।

समुद्रगुप्त—मंत्री को ऐसी आज्ञा की क्या आवश्यकता है! उन्हें आने दो। और देखो युवराज अखिल को आज इसी उद्यान में उपस्थित होने का आदेश दो।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

वसुबन्धु—अब मुझे आज्ञा दीजिये महाराज। (अभिवादन तथा प्रस्थान)

(हरिसेन का प्रवेश तथा अभिवादन)

हरिसेन—वसुबन्धु से आप गुप्त-मंत्रणा कर रहे थे। इसीलिये विघ्न डालना उचित नहीं समझा।

समुद्रगुप्त—वसु कुछ देर काँची में रहा है। उसके चेहरे से अखिल के मनोभावों को भाँप रहता था।

हरिसेन—युवराज के साथ मिलकर वसुबन्धु सम्राट् के विरुद्ध किसी कुचक्र की रचना कर रहा है। महाराज को सावधान रहना चाहिये।

समुद्रगुप्त—क्षत्रिय के शौर्य्य की इस प्रकार खिल्ली उड़ाना तुम्हें शोभा नहीं देता मंत्री। यदि वसु ऐसा ही कुछ कर रहा है तो वह स्वयं पतनके ऐसे गर्त में गिरेगा जहां से उसे कोई न उबार सके। किन्तु तुम ने एक बौद्ध भिक्षु से ऐसी आशा क्यों की?

हरिसेन—तथागत से विमुख होकर वसु ने त्रिपुरारि की आराधना आरम्भ कर दी है। उस दिन कई नागरिकों ने इसे शिवालय से निकलते देखा था।

समुद्रगुप्त- यह तो और भी अच्छा है कविवर। संसार का मंगल करने वाले भगवान का उपासक किसी का अहित क्यों सोचेगा ? तो भी तुम्हारी इस शुभाकाँक्षा पर हमें हर्ष है।

हरिसेन—आप का विख्यात विक्रम युग युग तक आपकी रक्षा करे। युवराज आर्य्यल के विषय में सम्राट् ने क्या निर्णय किया है ? प्राणदण्ड या प्रतिशोध—कितने कटु शब्द बोलने का दुःसाहस उसने सम्राट् के सम्मुख किया था !

समुद्रगुप्त—प्राणदण्ड तो मैं ऐसे वीरव्रती को देना नहीं चाहता। उसे उसके पैतृक राजसिंहासन पर आसीन करने का मेरा संकल्प है। किन्तु यह तभी हो सकेगा यदि वह प्रतिशोध के उस अधम विचार का त्याग कर दे। अब उसमें पहले की सी उद्दण्डता तो नहीं रही। एक आँधी सी चलने लगी है उसके हृदय में। उद्दाम तरंगें तट को प्लावित कर के कभी जलधि के गर्भ में लीन हो जाती हैं और कभी फिर पुलिन को छूने का प्रयास करती हैं।

(द्वारपाल का प्रवेश तथा अभिवादन)

द्वारपाल—युवराज आ गए हैं महाराज।

समुद्रगुप्त—उन्हें यहीं ले आओ।

(अभिवादन के पश्चात् द्वारपाल का प्रस्थान)

हरिसेन—मैं सम्राट् से विजयोत्सव के विषय में परामर्श लेने

आया था।

समुद्रगुप्त—मेरी ओर से इस उत्सव को सफल बनाने के सर्वाधिकार तुम्हारे पास हैं।

हरिसेन—बाहर के लगभग तीस देशों के प्रतिनिधि सम्राट् के इस उत्सव पर शुभेच्छा का संदेश लेकर आ रहे हैं।

समुद्रगुप्त—यह तुम्हारे अपने पराक्रम का प्रसार है।

(युवराज अखिल का प्रवेश)

समुद्रगुप्त—आओ युवराज! बैठो इस शिलापीठ पर। प्रकृति की यह विस्तृत रूप-राशि शायद तुम्हारे संकुचित हृदय की सिलवटें निकाल दे।

अखिल—काञ्ची के युवराज की उदारता के गान अब भी दक्षिण की बरसाती नदियाँ गा रही होंगी।

समुद्रगुप्त—मुझे इसका गर्व है।

हरिसेन—मुझे अब आज्ञा दीजिए महाराज।

(अभिवादन तथा प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—तुम्हें याद है युवराज तुमने प्राणदण्ड या प्रतिशोध में से एक की माँग की थी? क्या अभी तक तुम उसी निर्णय पर अविचल खड़े हो?

अखिल—निर्णय शासक का हुआ करता है। बन्दी का नहीं।

समुद्रगुप्त—तो फिर सुन लो। हमारा निर्णय है कि तुम्हें प्राणदण्ड नहीं मिलेगा। हम तुम्हें इस कारावास से आज ही मुक्त करते हैं और अपना प्रतिशोध लेने के लिए तुम्हें आज्ञा करते हैं। ले आओ अनाप

धनुष बाण !

अखिल—यह सम्राट् ने उसी दिन कह दिया होता !

समुद्रगुप्त—(प्रसन्न हो कर) तो अब अखिल बदल गया है क्या ?

अखिल—जब आँसुओं के छींटों से चिनगारी की राख ही बना दी तो आप ज्वाला प्रज्वलित करने के लिये कहते हैं। आराध्य की अर्चना का समय आया तो कलियाँ ही मुरझाई हुई पाईं।

समुद्रगुप्त—तो क्या मैं यह समझ लूँ कि युवराज के मन का कलमष धोया गया ?

अखिल—यह तो मैं स्वयम् नहीं समझ सका। कभी कभी दर्पण इतना धुँधला होता है कि मैं उस में केवल अपना बाह्य ही देख पाता हूँ। जाने अन्तर दिखाई ही नहीं देता।

समुद्रगुप्त—मैं सब जानता हूँ युवराज। उस दिन पृथ्वी पर असावधानी से फेंकी हुई उस मुक्तामाल को देख कर मैं तुम्हारे संकट का कुछ अनुमान लगा सका था।

अखिल—(घबरा कर) क्या महाराज ?

समुद्रगुप्त—(मुस्कराते हुए) घबराओ मत। प्रेम के उस उपहार को इस प्रकार फेंक देना पुरुष के लिये कितना कठिन है ! नारी तो शायद ऐसा कर सके !

अखिल—(विस्मय से पहले अपनी ओर फिर सम्राट् की ओर देख कर)

आप के इन शब्दों का रहस्य मेरी समझ में नहीं आया।

समुद्रगुप्त—(बात बदल कर) अखिल मैंने उस दिन तुम से पूछा था कि तुम्हें यह माला किस ने दी थी।

अखिल—वह हमारा अन्तिम मिलन था महाराज। वह गा रही थी एक सुन्दर गान।

समुद्रगुप्त—(उत्सुकता से) क्या था वह गाना ?

अखिल—"श्यामघन में दामिनी मैं"—(सम्राट् के चेहरे पर निराशा देख कर) क्या आप को यह गाना अच्छा नहीं लगा ?

समुद्रगुप्त—(शून्य दृष्टि से) बहुत अच्छा लगा। इतना अच्छा कि जी होता है मैं इस संसार को भूल कर केवल इसी गाने को याद रख सकूँ। (मुद्रा बदल कर) अच्छा युवराज तुम चलो। तुम आज से हमारे अधिक समीप हो गए हो। विजयोत्सव पर तुम्हें आमंत्रित किया जाएगा।

(अभिवादन के पश्चात् युवराज का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—(शून्य दृष्टि से) दामिनी को चंचला ही तो कहते हैं। (ठहर कर) किन्तु भारत सम्राट् के जीवन को यह एक लघुतरंग क्यों प्रकंपित कर रही है ? विजयोत्सव मनाया जाने वाला है। चलना चाहिये।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

समय—प्रातःकाल

(एक उद्यान में पाटलीपुत्र के युवक और युवतियाँ विजयोत्सव की तैयारी में संलग्न हैं। कुछ फूल तोड़ रहे हैं। कुछ मालाएँ पिरो रहे हैं। कुछ शिलापीठों पर बैठे हुए इस शुभोत्सव की चर्चा कर रहे हैं। पुष्प मालाएँ बनाता हुआ युवतियों का एक झुंड गा रहा है। श्यामा और सुनीता भी उन्हीं में हैं)

युवतियाँ—(गीत)

हंस रही मधु की कली।

मकरंद झरता जाए है।
परिमल बिखरता जाए है।
स्मित से अधर के मोहिनी,
भंवरे का मन भरमाए है॥

मारुत के झूले में पली।
हंस रही मधु की कली॥

शशि के अधर ललचा गए।
नभ से धरा पर आ गए।
अस्फुट कली पर स्नेह की,
दो बूंद प्रिय बरसा गए॥

स्नेह के साँचे ढली।
हंस रही मधु की कली॥

पहली—आज क्या बहार आई है इस उद्यान में! कलियों की मुस्कान, पक्षियों का कूजन, बहार की अठखेलियाँ और इस पर यह खुशी का तूफ़ान!

दूसरी—इस महोत्सव में भाग लेने के लिये सभी आतुर हैं।

तीसरी—विजयोत्सव में होगा क्या?

एक युवक—(समीप आकर) मैं बताऊँगा। देश-विदेश के नृपति आएँगे।

पहली—वह क्यों?

युवक—भारत सम्राट् के समान इतने बड़े राज्य का स्वामी अखिल विश्व में आज दूसरा नहीं। हमारे महाराज से मित्रता बनाए रखने ही में उनकी कुशलता है।

दूसरी—और क्या होगा उत्सव में?

युवक—और? नृत्य, संगीत, सेनाओं का निरीक्षण, खेल, तमाशे, प्रतियोगिता। न जाने क्या कुछ होगा युवती! उस दरबार पर देवता प्रसून बरसाएँगे।

(प्रस्थान)

पहली—सुना है इस अवसर पर महाराज वीरों और सन्यासियों का सम्मान करेंगे।

दूसरी—इतना ही नहीं, राजनैतिक अपराधियों को मुक्त कर दिया जाएगा। सुना है युवराज अखिल भी दरबार में सम्मिलित हो रहे हैं।

श्यामा—(व्यंग्य से) और नहीं सुना तुमने ? युद्ध में वीर गति पाने वाले सैनिकों को भी आमंत्रित किया गया है।

सब—छिः छिः। यह क्या कहा तुम ने वीर वधू ?

सुनीता—(डालिया में देख कर) फूल तो एक भी नहीं रहा। अभी तो कितनी ही मालाएँ बनानी होंगी।

(डालियाँ उठा कर चलती हैं। सब युवतियाँ पीछे पीछे उछलती कूदती चलती हैं)

(मंत्री हरिसेन तथा वसुबन्धु का प्रवेश)

हरिसेन—मन्द मलय मारुत बह रहा है महाश्रमण। उमंगों से लदे हुए इन क्षणों में तुम इतने उदास क्यों हो ? कवि होते हुए तुम्हारे दिल की कली मुरझाई सी क्यों है ?

वसुबन्धु—ऐसा तो नहीं है राजमंत्री !

हरिसेन—मैंने सुना है अपने आराध्य से रूठ गये हो तुम।

वसुबन्धु—कवि के लिये तो सारा विश्व ही आराध्य है।

हरिसेन—महाश्रमण, कवि जब विश्व से रूठ जाता है तो फूल कुम्हला जाते हैं। नक्षत्र रोने लगते हैं। मेघ आँसू बहाते हैं। कविता के प्राण तो इस विश्व में ही हैं।

वसुबन्धु—इसी लिये तो मैं इस अनन्त विश्व में लीन होता जा रहा हूँ।

हरिसेन—कभी कभी मानव को विश्व का मोह इतना घेर लेता है कि वह उस चिन्मय ज्यजोति को भी भुलाता है जो

मानव को सुपथ की ओर अग्रसर करती है। कवि को इस स्थिति से सदा बचना चाहिये। (महाश्रमण की ओर देख कर) तुम फिर उदास हो गए? ऋतुराज की इस छटा को निहारो भिक्षुराज। मुझे अब कहीं जाना है।

(प्रस्थान)

वसुबन्धु--मेरी जिज्ञासा अदृश्य से हट कर दृश्य में आ गई है। महामंत्री अपने हृदय की आशङ्का का संकेत बात २ में कर गए। तो क्या उन्हें ज्ञात है कि मेरे पाँव किस पथ पर बढ़ने वाले हैं। (सोचकर) भिक्षुणी। मुझे क्षमा करना। उस दिव्य आलोक को छोड़ कर मैं अन्धकार की ओर जा रहा हूँ। मेरे कर्मों का मूल मस्तक में है, हृदय में नहीं।

(प्रस्थान)

(कञ्चन तथा तुषार का प्रवेश)

कञ्चन—हृदय पर से एक बोझ उठता जा रहा है किन्तु आकाश में कालमेघों की दो एक टुकड़ियाँ अभी तक सूर्य को ढाँपे हुए हैं।

तुषार—आशा का नवप्रभात होने वाला है कञ्चन। तू अभी तक निशा के अन्धकार में भटक रही है।

कञ्चन—मैं मृत्यु से जीवन में, अन्धकार से प्रकाश में जा रही हूँ। प्राणदण्ड वह मुझे देंगे नहीं। प्रतिशोध की मेरी आग अब बुझती सी जा रही है।

तुषार—तो क्या होगा ?

कञ्चन—दिल की भाप इन सुदर्घि पलकों को सजल कर के चली गई। अब भी सोचती हूँ कि किसी प्रकार ये प्राण उस अनन्त में लीन हो जाते तो...

तुषार—(बात काटते हुए) ऐसा मत कहो सखि। ऐसा सोचना तो कायरता है।

कञ्चन—जब अन्तर में झाँकती हूँ तो अब भी सोचती हूँ कि प्रतिशोध तो मुझे लेना ही चाहिये। किंतु किस से लूं प्रतिशोध ? उनसे जिन का स्नेह उन्मुक्त है ? जिनका अन्तःकरण अबाध सौहार्द से पूर्ण है ? (तुषार की ओर देख कर) कल विजयोत्सव पर दरबार में मुझे भी जाना होगा। नियमित किस ओर लिये आ रही है ?

तुषार—तुमने उन्हें यह क्यों न बता दिया कि तुम वही कञ्चन हो।

कञ्चन—मैं ने उन्हें वह गाना सुनाया। वे निराश दृष्टि से शून्य में देखने लग गये। अब मैं भी यही सोचती हूँ कि मैंने उन्हें क्यों न बता दिया कि मैं कञ्चन हूँ। उनके मन में पुरुष को मुक्त करने में है उसे बाँधने में नहीं।

तुषार—अब चलना चाहिये कञ्चन। सूर्य सिर पर आ गया।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

समय-रात्रि का प्रथम प्रहर

(राजोद्यान के मध्य में एक मंडलाकृति वेदी है जो कई मंडपों से परिवेष्टित है। चारों ओर कदली स्तम्भ लगे हैं जिन पर चन्दन पल्लवों से निर्मित बंदनवार बंधा है। रत्नदीप जगमगा रहे हैं। दिव्य धूपसे निस्सारित धूम्रराशि की शोभा अपरि-सीम है। वेदी मंगल द्रव्यों से परिव्याप्त है। मंडपों में विदेशी नरेश तथा राजदूत आसीन हैं। वेदी पर एक उच्चासन पर सम्राट् समुद्रगुप्त विराजित हैं। उनके दाएं बाएं राज्य के कर्मचारी हैं। एक ओर से रम्भा अन्य नर्तकियों के साथ वेदी पर आकर नृत्य तथा गान आरम्भ करती हैं।)

रम्भा—(गाना)

पूर्ण हो गई मन की साध।
मिले हृदय से हृदय अजान।
हुआ एकता का जय गान।
जाग उठे हैं गरिमावान,
आज राष्ट्र के सोये भाग।
पूर्ण हो गई मन की साध॥
ले चुटकी में लाल गुलाल।
चलो सजाएं माँ का भाल।

हम बाँहों में बाहें डाल,
अर्पण कर दें प्रेम अगाध।
पूर्ण हो गई मन की साध ॥

(गाना समाप्त हो जाता है किन्तु नृत्य चलता रहता है। सम्राट् तन्मय हो कर नृत्य का रसास्वादन करने लगते हैं। युवराज अखिल बार बार वेदी के एक कोण पर बैठे महाश्रमण की ओर देखते हैं। वसुबन्धु धीरे धीरे अपने अंगरखे से एक छुरा निकालता है। अखिल की दृष्टि पड़ जाती है। किन्तु दूसरे ही क्षण वसुबन्धु छुरा तानकर सम्राट् पर वार करता है। अखिल चीख कर सम्राट् के सन्मुख आ जाते हैं। छुरा अखिल के वक्ष पर लगता है और वह मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं।
कोलाहल मच जाता है)

सम्राट्—(युवराज को थामे हुए तथा क्रोध से) कषाय को लज्जित करने वाले उस...

अखिल—(आँखें खोलकर) नहीं उसे क्षमा करदो सम्राट्।

(मंत्री हरिसेन के संकेत से सब का प्रस्थान। केवल हरिसेन, सम्राट् तथा युवराज अखिल रह जाते हैं)

सम्राट्—क्षमा ? अखिल तुम यह क्या कह रहे हो ?

अखिल—(पीड़ा का नाट्य कर के) मेरे पास अधिक समय नहीं महाराज। (इधर उधर देखते हैं)

सम्राट्—यहां कोई नहीं है अखिल। क्या कहना चाहते हो तुम ?

अखिल—(अपने गले में पड़ी हुई मुक्तामाल को देख कर) यह माला ! (पीड़ा का नाट्य) ओह ! यह आप ले लीजिए। इसे मैंने···(कराहते हुए) इस स्वार्थी विश्व से छिपाकर मैं ने इसकी पूजा की है। (शीघ्रता से कहते हुए) इन आंखों के पानी से इसके मोतियों की चमक कुछ···(पीड़ा का अनभव करते हुए) धुँधली हो गई है। इसके लिये क्षमा करना। (आँख ऊपर कर के) ले लीजिये इस माला को। (सम्राट् माला लेते हैं) कृष्णा नदी के उस तीर पर आप ने···(कराहते हुए) मुझे मेरी···(आवाज धीमी होती जाती है) निर्भीकता पर यह (ऊपर देख कर) मैं वही कञ्चन···

सम्राट्—(दुःख, उत्सुकता तथा व्यग्रता से) कञ्चन ! (कञ्चन के कंधों पर हाथ रखते हैं)

(कञ्चन को जोर की हिचकी आती है तथा उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। नेपथ्य से निराशा भरा वाद्य संगीत होता है। सम्राट् धीरे धीरे खड़े हो जाते हैं। अपने हाथ में पड़ी हुई मुद्रा को निकाल कर कञ्चन को पहना देते हैं। संगीत का नाद दीर्घ, दीर्घतम, प्लुत होने लगता है।)

सम्राट्—तूने यह कैसा प्रतिशोध लिया कञ्चन ? विद्युत् की क्षणिक ज्योति सी तू मेरे जीवन में आई और चली गई। तेरी मधुर स्मृति में कञ्चन के जिस झूले को मैंने अपने स्वप्नों से सजाया था उसे तू स्वयम् ही

तोड़ गई ! आशा की जिस किरन को लेकर मैं तुम्हें ढूंढने निकला था श्यामघन के समान तू ने किस निर्ममता से उसे ढाँप दिया ! (इधर उधर देख कर) हरिसेन !

हरिसेन—किसे ढूंढ रहे हैं महाराज ?

सम्राट्—इस अनंत विश्व में कौन किसे ढूंढे। मंत्री ? जिस तारकज्योति की आशा में निशीथ से प्यार किया था उसे ढूंढ कर भी खो दिया। मनुष्य अपने अन्तस्तल को ही ढूंढ ले तो बहुत है।

(नेपथ्य से गाना होता है। सम्राट् निराशा भरे नेत्रों से सामने देखने लगते हैं पर्दा गिरना आरम्भ हो जाता है)

(गाना)

यह जीवन एक पहेली है।
आना है निशानी जाने की।
रोना प्रतिध्वनि है गाने की।
यह जन्म मरण, यह हास रुदन,
है चाल हमें भरमाने की॥
कब मरा शलभ जिसके प्राणों,
में आग भरी अलबेली है।
यह जीवन एक पहेली है॥

(पटाक्षेप)